# पार्वती के कगन

(रिपोर्ताज सकलन)

पार्वती
के कंगन
ललित शुक्ल

डॉ० विजय रावत के नाम
जिन्हें रचना मे
सार्थकता पसद है

# निवेदन

'सोज़ालोवो' के बाद मेरा यह दूसरा रिपोर्ताज सकलन है। ये रचनाए जब पत्र पत्रिकाओ मे छपी थी, पाठको के पत्रो से उस समय मैं उत्साहित हुआ था। पवत-प्रदेश, नगर, उपनगर और मैदानी भाग मे घूमते हुए जो साथी मेरे साथ रहे हैं, उनके नाम जाने-अनजाने रचनाआ मे आ गये हैं।

इन रचनाओ की दुनिया को बहुत समीप से मैंने देखा है। दृश्यो को पहचाना, परखा और जिया है। प्रामाणिकता के लिए इससे अधिक सबूत मैं क्या दू ? यह ससार मेरा अपना ही नही, आपका भी है।

—ललित शुक्ल

शातिद्वीप
4 वाणी विहार, उत्तमनगर
नयी दिल्ली-110059

# प्रकृति की गोद मे शांति निकेतन

मधुर स्वप्न के प्रसग म गुरुदेव रवींद्रनाथ ने अपने प्रियतम से कहा था कि वह छाया की ओट मे क्यो खडे हैं। पूजा की थाली मुसकाते फूलो से भरी है। प्रतीक्षा वेला है। इतना ही नही, जो आता है, अपनी अपनी पसन्द का एक-एक फूल चुन लेता है। गीतांजलि की पक्तियो के भाव मन मे गूँजते रहते थे। आप कितनी कोशिश कर लीजिए पर जिन्दगी अपनी रफ्तार से चलती रहती है। न चाहते हुए भी थककर सुस्ताने लगती है। कई साल पहले सोचा था कि शाति निकेतन जाऊँगा और अतीत की स्मति छवियो से अपनी झोली भर लूगा पर उस समय अपना चाहा हुआ नही हो पाया।

कामना कभी बूढी नही होती। समय के साथ उसमे निरतर निखार आता रहता है। पूणता के अवसर पर वह खिल पडती है। यदि यह कामना अकिंचन की है तो पत्रहीन पलाश के वृ तो पर झूलते टेसू-कुसुमो की भांति और सुदशन लगने लगती है। कचनजघा एक्सप्रेस से बोलपुर स्टेशन पर उतरा तो बहुत अजनबीपन नही महसूस हुआ। इसलिए कि बोलपुर का कस्बाई चेहरा जाना पहचाना लगा। छोटी छोटी दुकानें, ऊबड खाबड पतली सडक, फुटपाथ पर बठे हुए साधारण लगनेवाले दुकानदार और धीरे धीरे चलने वाले मुसाफिर आभास देते रहते हैं कि यह कोई न देखा हुआ उपनगर नही है। उत्तर भारत के किसी भी नगर में जाइए, ऐसे कस्बे मिल ही जाते हैं। सभी की प्रकृति एक होने स लगता है आर्यों की घुमक्कड प्रवत्ति का विस्तार दूर दूर तक फला हुआ है। जहाँ-जहाँ गए, अपनी सस्कृति और सभ्यता के मान-प्रतिमान लेते गए।

मकानो की बनावट, व्यक्तियो के चेहरे और वातावरण का रूखापन देखकर साफ झलकता है कि यह इलाका बहुत गरीब है। होगा, पर कलात्मक अभिरुचि मे बहुत आगे। जहाँ ऐश्वय होता है वहाँ कला नही होती। वैभव की सस्कृति ही अलग है। वहाँ जन मानस का खुली हवा मे साँस लेने का अवसर कम ही मिलता है। मैं तो कहूँगा, नही ही मिलता। पुरबिए रिक्शेवाले दिल्ली मे भी हैं और बोलपुर मे भी, पर दोनो मे बहुत अतर है। स्थान स्थान की तासीर है।

दिल्ली की मस्कारहीन धरती पर यही रिक्शेवाला अकड़ कर बातें करता है जबकि शांति निकेतन म उसकी जुबान की मिठास म मिसरी घुल जाती है। जब जहाँ का दाना पानी बस वहीं की पौध। यहाँ रिक्शेवाला किसी महिला या लड़की को 'दीदी' कहकर सम्बोधित करता है। दिल्ली की 'मैडम' के लिए 'दीदी' सम्बोधन कदाचित अपमानजनक लगे।

स्टेशन से शांति निकेतन की दूरी ज्यादा नहीं है। पाँच दस मिनट चलने के बाद शहर पीछे छूट जाता है। वही दुबली पतली सड़क साथ चलती है। किनार की वक्षावलियाँ पीछे की ओर भागी जा रही हैं। मुसाफिरों म उनका कोई लगाव नहीं है। क्षण भर की भेंट किस काम की। और प्यास जगाती है ऐसी भेंट। ऐस लगाव म अलगाव ही अच्छा है।

चारों ओर निहारता हूँ। समतल भूमि पर सड़क काफी दूर तक सरकती चली गई है। इतनी दूर कि आँखें उस पार नहीं पातीं। मधुमास अपनी पूरी भव्यता के साथ उतर आया है। रिक्शा धीमी गति से आगे की ओर बढ़ा जा रहा है। शांति निकेतन समीप आ गया। लताओं, फूलों एव हरीतिमा ओढ़ी वनस्पतियों के बीच शिक्षा सदनों की मासूमी जिज्ञासा को और बढ़ाती है। इस केन्द्रीय विश्वविद्यालय के परिसर की कोई दीवार नहीं है। अलग-अलग सकाय व भवन फूल पत्तियों से घिरे हैं। रिक्शा छोड़ देता हूँ। गुरुदेव की विद्या भूमि को मन ही मन अभिवादन करता हूँ। खुल आसमान के नीचे भी शिक्षा की व्यवस्था है। गोलाद्ध आकृति म शिक्षार्थियों को बैठन के लिए पत्थर की बैंच बनी है। वहीं श्यामपट्ट स्टैण्ड पर रखा है। आसपास हरियाली और फूलों की रंगीनी बड़ी भली लगती है।

कला शिल्पी की गढ़ी हुई मूर्तियाँ भवनों के पास स्थापित की गई हैं। सारा वातावरण खुला खुला है। एक मोहक कमनीयता की सुगंध चारों ओर फैली है। शालीनता का पाठ तो लगता है यहाँ की प्रकृति को भी पढ़ा दिया गया है। सुजान मालियों के करतब के साँचों म ढली प्रकृति अपने सम्मोहन म दर्शकों को बाँधती है।

आम्र मजरी की सुगन्ध की मादकता मे सारा परिवेश रसमय हो गया है। पलाश यहाँ जल्दी फूल गया है कदाचित आम का साथ देने के लिए। माधवी, बोगन बेलिया, कणिकार, जवाकुसुम और अनगिनत फूलों की बहुवर्णी सुदरता से आवेष्टित है शांति निकेतन। शिक्षार्थियों के मुखमण्डल पर विद्या का तेज और नम्रता की द्युति जगमगाती दीखती है। हाँ, इस शिक्षायतन के परिसर को भली प्रकार सुसज्जित करन के लिए शायद पर्याप्त धन सरकार नहीं देती। सड़कें हैं पर सफाई नहीं है। भवनों के पास खुली जगह है पर वहाँ कचरे का ढेर भी लगा है। इसे साफ सुथरा रखन के लिए पैसा और परिश्रम दोनों चाहिए।

भविष्य मे शायद कभी देश की शिक्षा की ओर कोई बुद्धिमान अधिकारी ध्यान दें। रगकर्मी परिवेश मे कला के प्रति वे भी समर्पित हो जाते हैं जिन्ह कला से कभी कोई सरोकार नहीं होता। अच्छा फूल, आकर्षक मौसम सज्जापूर्ण वातावरण देखकर सभी का मन लटटू हो जाता है। दिगत की ओट मे डूबने वाली किरणें एव सकाल मे उगती हुई ताम्राभा देखकर सभी प्रफुल्लित होते हैं। धूप कुछ तेज हो गई है। अभी दो बहुत आवश्यक काम बाकी हैं। एक तो अभयारण्य देखना और दूसरे रवीन्द्र की कविता म वर्णित 'कोपाई' नदी का दर्शन।

बल्लवपुर पार्क का ही नाम अभयारण्य है। हरिणो की कई किस्मे यहाँ पाई जाती हैं। यह पार्क काफी दूर तक फला हुआ है। इसी के समीप एक छोटी झील है। हरिणो के नाम पर ही अभयारण्य को 'डियर पार्क' भी कहा जाता है। प्रवास पर गए हुए पक्षी लाखो की सख्या मे झील के पास लौट आए हैं। कोई एक ताल है, कोई लय है किसी लुभावने आवर्पण म विंध कर पखो पर खेलने वाले प्राण अपनी कौतुकी मुद्रा मे दिखाई पडते हैं। यह पखो की दुनिया है, गगन विहारियों का ससार है। धरती अपने ममत्व मे सभी को बांधे है, चाहे वह आसमान मे उडने वाला जीव हो, या भूमि पर विचरने वाला प्राणी।

अभयारण्य की झील मे विचरण करने वाले पक्षी 'सीखपर' होते हैं। इनका अंग्रेजी नाम पिण्टेल है। यह एक प्रकार की बतख है। चैत के बाद भारत के उत्तर भूभाग मे इसका आगमन होता है। इसी का लम्बी पूछ होने के कारण 'पुछार' भी कहा जाता है। यह अपने देश का अतिथि पक्षी है। गर्मी के दिनो मे पहाडो पर चला जाता है। समूह में रहना इसका स्वभाव है। उडना और जल विहार करना सब कुछ साथ-साथ। हजारो-लाखो की सख्या मे रहते हुए भाई-चारा लगातार बना रहता है। पशु पक्षी भी जानते हैं कि उनका हित अहित कहाँ है। व्याघ्र की लोभी दृष्टि इन पर गडी रहती है पर यह तो अभयारण्य है। यहाँ प्राणो का सकट नही है। शाति निकेतन से अभयारण्य जाकर पैदल लौटने का अलग आनन्द है।

ऊँचे ऊँचे शाल वृक्षा की सघनता मोहक लगती है। लगता है अपनी लम्बाई से आसमान की ऊँचाई नाप लेना चाहते हैं। गुरुदेव ने कही इनके बारे मे लिखा है कि दूर से आने वाले पथिको को शाल वक्षो की ऊँचाई सकेत करती है कि शांति निकेतन यही है। अभयारण्य का दूसरा अधिकाधिक पाया जाने वाला वृक्ष 'आकाश मोनी' है। बँगला भाषा का यह नाम अभयारण्य के एक कर्मचारी ने बतलाया था। हलके हरे रग की पत्तियाँ, यूकिलप्टस की पत्तियो जैसा। ऊँचाई ज्यादा नही। अभयारण्य मे निश्चित होकर घूमिए। जगली जानवरो का कोई डर नही है। एक भालू बेचारा कदखाने मे है। हरिणो की भोली भाली आँखें

अभयारण्य का अवरा उतारती घूमती हैं। एक क्षण म स्थिरता की प्रतिमूर्ति लगते हैं ये, पर अगले ही क्षण म उड़ाछू होने के लिए तत्पर दीखते हैं। इनकी चौकन्नी आँखों मे भोलेपन की अगणित छायाएँ तैरती रहती हैं।

शिक्षा निकेतन, झील, अभयारण्य और सौंदय लुटाती प्रकृति मे कोई ऐसी अतर्धारा यहाँ दीखती है जो अपने शीतल कणो से सराबोर कर देती है। तन-मन जुड़ा जाता है। हम भावलोक की यह सारी सम्पदा मिल जाती है जिसके लिए हम क्षण प्रतिक्षण बचैन रहते हैं। अपर्णा टैगोर वहीं मुझे एक दतकथा सुनाती हैं। कलकत्ते स मेरे साथ गई थी।

कथा रवीद्रनाथ ठाकुर के बारे मे है। शांति निकेतन के कण-कण म उनकी स्मृतियो की दीप्ति है। दोनो एक दूसर के पूरक हैं। किस्सा इस प्रकार है कि स्वच्छ आकाश म बादल देखकर एक व्यक्ति ने कहा— 'देखा, रवीद्रनाथ गोद मे बिल्ली का बच्चा लिए आसमान म हैं।" आकार साम्य के आधार पर दशकों को बात ठीक लगी। इस कलात्मक और यथाथ चित्र के बारे म उसने कई लोगा से कहा। दो, चार, दस, बीस लोग ललचाई आँखो से आकाश मे रवीद्रनाथ को देखने लगे। थोडी देर के बाद वह आदमी गायब था। सभी लोग दृश्य देखत ही जा रहे थे। तन्मयता की यह लीला कितनी देर तक चली कहा नहीं जा सकता।

कोपाइ नदी के बारे मे गुरुदेव की कविता म पढा था। यह लम्बी रचना उनके 'पुनश्च' संकलन मे है। बहुत छोटी नदी। क्षुद्र नदी कह लीजिए। पर कहीं यह नाराज न हो जाए। जल्दी नाराज हो जाती है तभी तो इसका नाम कोपाइ है, कोप करने वाली। शांति निकेतन के समीप ही उत्तर दिशा म पश्चिम से पूव की ओर बहती है। आगे जाकर कोपाइ का सम्मिलन पदमा नदी से होता है। सभी जानते हैं, पदमा बंगाल की प्रमुख नदी है। बंगाल मे गंगा का ही दूसरा नाम है पदमा। रिक्शेवाले ने आने-जाने के दस रुपये माँगे। कोपाइ को देखने की लालसा इतनी तीव्र थी कि वह कुछ भी माँगता, मैं देने को तयार हो जाता।

नदी की ओर रिक्शा चल पडा। कच्ची पगडडी पर उतर गया था वह। मुझे कोई विस्मय नहीं हुआ। इस महादेश के असख्य लोगो का जीवन पगडडियो से जुड़ा है। सामने दीखता है ग्वालपाडा गाँव। माटी के बने हुए कच्चे घर जिनके सिर पर पुआल की छाजन। गलियारो में खेलते हुए नग धडग धूलि-धूसरित बच्चे। इन्हे कोई चिंता नहीं है। देश चाहे जितना बार आजाद हो आधुनिक हो, इन्हें तो धूल माटी ही भाग्य मे लिखी है। रिक्शे को घूर-घूरकर देखते हैं। चेहरे पर अनेक जिज्ञासाओ के फूल खिले है। ये बच्चे ही तो गँवई-गाँव के घन है, वहाँ की शोभा हैं। वृक्षो की हरियाली गाँव को घेरे हुए है। बाँस के लम्बे झाडो स घना झुरमुट ही बन गया है। इस गाँव के चेहरे को किसी नौसिखिए कारीगर ने लापरवाही से सवारा है। बनाने कुछ चला था पर कोई

अन्य रूप ही निकल आया। अब तो जो बन गया, सो बन गया। ग्वालपाडा मे राजवशी रहते है। गुरुदेव ने 'कोपाइ' रचना में इन्हें याद किया है। कविता की थोडी-थोडी याद बची है। हठात मन उधर दौडता है। एक तारतम्य उभरता है। सुधियो के बिम्ब जागत हैं और आँखो के फलक पर जड उठते हैं।

कोपाइ दूर से चलकने लगी। अपनी कृश काया को बालुका तटो म छिपाए हुए है। रिक्शा पैदल चल रहा है। गुरुदेव की रचना के खण्डचित्र मेरे ध्यान म उभर आए हैं। आम, बरगद, झोंपडी, खँडहर, बूढा, कटहल वृक्ष। साथ मे सरसो के खेत। पगडडियाँ कास और सरपत से घिरी हैं। धारा हृदयहीन है। गाँव डरता रहता है। कोपाइ का नाम श्रद्धास्पद ग्रथो मे आया है। यह गगा का धाराश अतस्तल मे सँजोए है।

थोडे दिन के बाद परिवतन की आँधी मे पुराना चेहरा उडा-उडा लगता है। सथाल के गाँव का रूप भी बदला है। कोपाइ की भाषा मे विद्वत्ता नहीं है। वह गाँव की बोली जानती है। वह अपना सम्बन्ध धरती और जल के साथ जोडे हुए है। यह छोटी नदी यायावर है, परिभ्रामी है। मुझे तो पता नही, गुरुदेव कहते हैं, धरती की सुनहली और हरी सम्पदा के प्रति कोपाइ की घुमक्कड धारा ईर्ष्यालु नही है। और सुनिए—वर्षा मे कोपाइ का तन-बदन हवशी हो जाता है जैसे किसी ग्रामीण युवा सथाल लडकी ने महुए की मदिरा पी ली हो। जोर से हँसती हुई वह लडकी भँवर के रूप मे अपनी घाघरी बचाती आगे बढ़ जाती है। कवि और समीप से देखता है। कोपाइ की अकिंचनता उसके लिए लज्जा का विषय नही है। उसका ऐश्वय उद्धत नही है और गरीबी मे तुच्छता भी नही है।

एक स्वप्नलोक जाग्रत था। रिक्शा चालक ने माथे का पसीना पोछा और खडा हो गया। कोपाइ थोडा आगे है बाबू जी। वहाँ तक रिक्शा नही जाएगा। कोई बात नही। पैदल ही चलते हैं। कोपाइ तक पहुँचने मे तीनेक मिनट लगे होंगे। अपर्णा बँगला की कविता याद करने लगी।

सर्पिल गति से बहने वाली कोपाइ। कोई भयकरता नहीं अजनबीपन नही। बिल्कुल परिचित नदी है। शात बह रही है। निमल जल की पतली धारा गतव्य की ओर तीव्र आकांक्षा से बह रही है। बालू पर चलना बहुत आसान नही है। मैं तो धारा के बीचोबीच खडा हो जाता हूँ। घुटने तक पानी है। ऐसी ही एक पागल नदी मेरे गाँव के समीप बहती है। अब तो उस 'सई' नाम से पुकारा जाता है पर पुराणो मे वह स्यदिका नाम से जानी जाती है।

कुश, कास और सरपत के थानो को साथ लिए चलती है कोपाइ। दूर से छोटी छोटी गायें आ रही है। साथ म बकरियाँ भी हैं। चरवाहा कधे पर लाठी सँभाले बहुत सतक नही है। नदी के साथ जानवरो का मन बहलता है। खुले वातावरण मे उन्हें आजादी का अनुभव होता है। घर पहुँच कर तो पुन खूँटे से

बँध जाना है। कोपाइ को देखकर विश्वास ही नहीं हुआ कि यह कभी कोप भी करती होगी। अधिक गहराई न होने के कारण वर्षा म तटो को तोडकर फैल जाती होगी यह। उस समय कोपाइ किसी की न सुनती होगी। लहरा की वणियाँ नाग पाश मे सब कुछ बाध लेती होगी। कोप की मुद्रा म प्रेम विह्वलता के चिह्न नही होते होगे। नदी की कोप भगिमा को कोई सागर ही झेल सकता है।

नन्ही-नन्ही चिडियाँ कोपाइ के पानी मे छप छप कर रही हैं। गायों से ये डरती नही हैं। यह तो प्रतिदिन का मेल मिलाप है। मैं कोपाइ को भली भाँति पहचान लेना चाहता हूँ। 'बाबूजी लौटिए' की आवाज रग मे भग करती है। लगभग आधे घटे के बाद पुन शाति निकेतन आ गया है। वास्तव मे शाति निकेतन अब एक शैली बन चुका है, एक जीवन पद्धति। चाल ढाल, पहनावा, वार्तालाप एव व्यवहार मे वही कमनीयता और शालीनता जिसकी नीव पर प्रेम और परस्परता की बडी बडी इमारतें खडी हो जाती हैं। कोपाइ और शाति निकेतन कितने तो समीप हैं। कोपाइ म कोप और सजीदगी दोनो हैं। स्वभावत होनी भी चाहिए। अभयारण्य वस्तुत प्रीति निकेतन है और शाति निकेतन तो जैसे सौष्ठव का ही दूसरा नाम हो।

# कवि का घर

उस कब्र की लम्बाई नौ गज है। नौ गज यानी अठारह हाथ। लोग बतलाते हैं कि यदि नौ गजी कपड़ा उस पर चढ़ाया जाता है तब भी छोटा हो जाता है। वहाँ अगर कब्र की लम्बाई के बारे मे कुछ पूछताछ की जाती है तो विश्वास की मुद्रा म उत्तर मिलता है—"साहब, एक बार का वाकया है कि नौगजी मजार सडक की ओर बढ़ती जा रही थी। अरे यही बडी सडक जो रायबरेली से जायस होती हुई सुलतानपुर जाती है। मजार की रफ्तार तेज थी। एक दही बचन वाली की निगाह पड गयी। अचभे मे वह चिल्ला पडी, "अरे, यह मजार तो बढ रही है!" फिर क्या था। मजार वहीं की वही रुक गयी। तिल भर भी आगे नहीं बढी। जायस कस्बे का सबमे बडा आश्चय है यह मजार। और ऐसी ही मजारें यहा कई है। 'मजार' शब्द पुल्लिग है पर लोकरुचि को कौन चनौती दे।"

लखनऊ-वाराणसी रेलमाग पर रायबरेली और अमेठी स्टेशनो के बीच जायस स्टेशन है। यह स्टेशन भी बहादुरपुर मे है जो जायस कस्बे से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर है। जायस के करीब ही कासिमपुर हाल्ट है। यहाँ केवल साधारण पैसेंजर गाडिया रुकती हैं। जायस सलोन माग पर नसीराबाद कस्बा है। गाँव की जनता अभी भी जायस और नसीराबाद को बडा शहर, छोटा शहर कहती है। दोनो कस्बो का रायबरेली, प्रतापगढ और सुल्तानपुर जिलो मे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इसी जायस मे हिन्दी के प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी का मकान है जो अब खंडहर भी नही रह गया है। अवशेष पर अभी भी लालची लोगो की निगाहें टिकी हैं। बची खुची दीवारो की लखौरी इटो को लोना खाये जा रहा है। जिस गति से उस महाकवि के घर की निशानियाँ मिट रही हैं, बहुत थोडे समय मे वहाँ की खेह माटी मे स्मृतियो का पुज गल जाएगा और पछताने के अतिरिक्त जायसी प्रेमियो के लिए कुछ नही बचेगा। दीवार का एक छोटा हिस्सा देखकर आभास हो जाता है कि जायसी का मकान एक हवेली के रूप मे था। असार अहमद सिद्दीकी बतलाते हैं कि उनके वालिद अब्दुलसत्तार न

बिस्मिल्लाह से यह कोठी खरीदी थी। उसका रकबा था लगभग बारह बिस्वा। जायसी की कोई संतान बची नहीं थी। उनके सात बेटों के अन्त की करुण कथा हृदय हिला देती है। जायसी के गुरु पोस्ते (अफीम की बोंडी) का पानी पीते थे। शिष्य को इस बात की जानकारी न थी। उसने 'पोस्तीनामा' नामक पुस्तक लिख डाली। जायसी के पीर को इस बात का पता लग गया। रचना में पोस्ते का पानी पीने वाले को बुरा कहा गया था। गुरु ने शाप दिया। खाना खाते समय छत गिरने से सभी बेटे एकसाथ मौत के मुंह में चले गए। 'बजायफे अहमदिया' इस तथ्य की गवाह है। बहन के परिवार से सम्बन्धित थे बिस्मिलाह जिन्होंने हवेली बेची थी। यह खरीद फरोख्त सन चालीस में हुई थी। इसकी असलियत सरकारी कागजों में कैद होगी। समय बीतता गया। यादों पर विस्मृतियों की धूल जमती गयी। पूरी हवेली बिक जाने पर वह लखौरी ईंटों की दीवार कैसे बच गयी ? इसकी भी एक कहानी है।

परतन्त्रता के दिनों में संयुक्त प्रदेश आगरा व अवध (उत्तर प्रदेश) में एक अंग्रेज सेक्रेटरी हुआ करते थे ए० जी० शेरिफ। विद्याव्यसनी अधिकारी थे। जायसी के साहित्य के प्रति उनके मन में अतीव अनुराग था। उन्होंने जायसी के अमर ग्रंथ 'पदमावत' का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया था। सूबे के आला अफसर थे। जायसी के मकान के पास ही उन्होंने एक स्मारक बनवा दिया था। ऐसे ही गोरखपुर के अंग्रेज कलक्टर हूबट ने कबीर चौरा पर कुछ काम करवाया था। ग्रियसन, पिंकाट आदि की हिन्दी सेवा को अपना देश कभी नहीं भूलेगा। ईंटों से बनी हुई चौकी के ऊपर दस बालिश्त ऊँचा यह स्मारक है। ऊपर की ओर बीच में है सफेद संगमरमर की एक तख्ती जिसकी लम्बाई साढ़े तीन बालिश्त है और चौड़ाई दो बालिश्त। स्मारक पर लिखा है 'बयादगार मलिक मुहम्मद जायसी मुसन्निफ पदमावत अमठी राज", जो बड़ी मुश्किल से पढ़ा जाता है। साथ में हिन्दी और उर्दू में जायसी की ये पंक्तियाँ भी लिखी हैं —

> केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल।
> जो यह पढ़ै किहानी, हम सँवरै दुइ बोल॥

जायसी का यह छोटा सा स्मारक कचाना मुहल्ले में है। यहाँ सैदाना और तम्माना मुहल्ले भी हैं जहाँ अधिकांशत शिया लोग रहते हैं। यहाँ के बुजुर्ग बतलाते हैं—'गवनर साहब बहुत नेकदिल आदमी थे। अदब और खासकर सूफी अदब से उनका गहरा ताल्लुक था। अपना लाव लश्कर लेकर आए थे। यहीं पड़ाव पड़ा था सामने वाली मस्जिद में। बड़े हाकिम की निगाह थी कि जिधर घूम गयी, उधर घूम गयी। तम्बू कनात कालीन एवं गलीचा से रौनक बढ़ गयी थी। अच्छा मजमा लगा था। आनन फानन सारा काम हो गया। बादशाह का

हुक्म जो था। सूफी शायर की निशानी बनवा दी। पर देखिए इसकी क्या हालत है। गन्दगी के ढेर पर यह निशानी सड रही है। कोई पूछने वाला नही है।"

अस्सी वर्ष की उम्र वाले बुजुर्ग जैगम अली को जायस का सुना सुनाया इतिहास मालूम है जो अब जायसी की 'कहानी' जैसा ही लगता है। चन्द्रभानु गुप्त जब उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री थे, उसी समय मेवाराम एस० डी० एम० ने गलियो मे खरजा बिछवाया था। जायस की जनता इस छोटे से काम को भी सराहती है जैसे उसे बहुत बडी उपलब्धि मिल गयी हो। यहाँ से अमेठी ज्यादा दूर नही है। वहाँ से उत्तर ढाई-तीन मील की दूरी पर रामनगर मे अमेठी के राजा साहब का महल है। सुलतानपुर जिले का गजेटियर कहता है कि अमेठी के राजा ने रामनगर मे अपने महल से लगभग दो सौ पचास गज की दूरी पर एक समाधि बनवायी थी। यह समाधि जायसी की है जो बहुत दयनीय स्थिति मे है। जन्म और मरण दोनो के स्मारक किसी पारखी शासक की राह देख रहे हैं। मजेदार बात यह है कि वायदो के सिलसिले चुनाव के पहले शुरू होकर चुनाव के बाद खत्म हो जाते हैं। सस्कृति और इतिहास की बातें तो बहुत की जाती हैं पर उन पर अमल नही हो पाता है। रचनात्मक सकल्प की धारा अफसरी रेगिस्तान मे गायब हो जाती है। साहित्य, सस्कृति और कला के नाम पर तमाम धन व्यय हो जाता है और इधर जायसी, कबीर, निराला, रहीम और प्रेमचद आदि के स्मारक अपनी फटेहाल स्थिति मे उदासी की शाम से घिर जाते हैं।

जायसी के नाम पर जायस मे लायब्रेरी और हाई स्कूल है। जैगम अली का कहना है कि लायब्रेरी नाम नाम की है। जासूसी नावल और मामूली किस्से-कहानी की किताबें वहाँ हैं। सुना जाता है कि स्कूल के नाम जमीन तो बहुत है पर इमारत का कही पता नही है। यह बतलाने की जरूरत मैं नही समझता कि इस इलाके के अधिकाश प्रायमरी स्कूल पेडो के नीचे लगते हैं। सैदाना के ताईद हैदर एक एक बात विस्तार से बतलाते हैं। गलियाँ गदी और टूटी हुई हैं। पानी का ठिकाना नही है। जायस का चेहरा अनेक झुर्रियो मे भरा है। आगे इसमे झुर्रियाँ ही बढती जा रही हैं। किसी भी शहरी व्यक्ति को पाकर जायस लोगो का दर्द इस प्रकार जुबान पाता है—"साहब, हमारी पेंशन दिलवा दीजिए। मेरे बेटे की सर्विस लगवा दीजिए। हम तो साहब चुनाव व वायदो के जगल म खो गए हैं। आप हमारी आवाज ऊपर तक पहुँचा दीजिए।" इन भोली जुबानो को नही पता कि ऊपर रहने वाले जरा ऊचा सुनते हैं।

जायसी और उनके महाकाव्य 'पदमावत' के सम्बन्ध मे अनेक रगो वाली जनश्रुतिया जायस मे फैली हैं। उनमे झलकता हुआ इतिहास का यथार्थ अपनी ओर आकर्षित करता है। कचाना मुहल्ले के एक बुजुर्ग जायसी की शख्सियत को मामूली बतलाते हैं। उनके अनुसार बदशक्ल थे मलिक मुहम्मद जायसी।

मलिक उनकी उपाधि थी। मुहम्मद नाम था। 'जायसी' नगर के नाम पर रखा गया कवि का उपनाम है। बचपन में ही इनकी रुझान सूफियाना थी। आठ-नौ साल की आयु मे ही घर से निकल भागे थे। कुम्हार के आवाँ मे घुस कर बैठने की तरकीब सूझी थी एक बार। आवाँ ठढा था पर वहाँ बैठना ही दशको के लिए कुतूहल का विषय बन गया। उधर से जाते हुए किसी आदमी न उनको देख लिया। कुम्हार बुलाया गया। बच्चे का आवाँ म बैठा देखकर वह हँस पडा। जायसी ने कहा—"माहिका हँससि कि कोहरा।" यही किवदन्ती तत्कालीन बादशाह शेरशाह के बारे मे भी प्रचलित है। चेचक के प्रकोप मे जायसी की बायी आँख जाती रही थी। शेरशाह एक बार जायसी को देखकर मुसकराया था। वहाँ भी जायसी की यही बात कही जाती है। बस 'कोहरा' के स्थान पर 'कोहरहि' है। अथ हुआ कि, "मुझको हँस रहे हो या मुझको बनाने वाले कुम्हार को हँस रहे हो ! ' इस बात म वचन चातुरी ज्यादा है।

जायस कभी भार शिव नरेशो के कब्जे मे था। पवित्र गगाजल से अभिषिक्त होने के बाद भार शिव नरेशों ने हिन्दू धम की पुन प्रतिष्ठा की थी। परम्परा के अनुसार इन राजाओ ने भी अपने समय मे अश्वमेध यज्ञ किए थे। गगा और शिव की भक्ति को इन्होने तत्कालीन कला मे भी उतारा था। इन्ही भार शिव शाखा के किसी राजा का अधिकार जायस पर था। इतिहास के आँगन म एक जनश्रुति उभरती है जिसे जायस की अति प्राचीन दीवारें आज तक सुनती आयी हैं। यही कि अरब के सरदार इमादुद्दीन खिलजी इनके भानजे मसूद गाजी, गोरी और नजमुद्दीन अपने कबीले के साथ हिन्दुस्तान आए। यहाँ रहने के ख्याल से इन्होने जायस के 'भरो' के ऊपर आक्रमण कर दिया। दोनो पक्षो मे घमासान युद्ध हुआ। हार जीत का निणय नही हो पा रहा था।

'भरो' के ऊपर शिव और भवानी की कृपा थी। उन्हें अपन देवता से वरदान प्राप्त था कि वे अपने शत्रु से रात म कभी भी नहीं हारेंगे। आक्रमणकारियो को एक तरकीब सूझी। क्यो न कुछ ऐसा उपाय किया जाय कि रात में दिन का आभास मिल सके। परिवर्तन तो जसे प्रतीक्षा ही कर रहा था। एक बडा दीया जलाया गया जिसे चलनी ढक कर काफी ऊँचाई पर रखा गया। भार-शिव सनिको ने उसे देख कर सोचा कि सवेरा हो गया होगा। वे अपने वरदान से भली भाँति परिचित थे। फलत सामने दीखने वाली हार से उनमे उदासी छा गयी। चलनी मे ढका बडा दीया उपनगर से सटे हुए एक टीले पर रखा गया था। भयकर युद्ध का बोलता चित्र खीचती है जनश्रुति। इमादुद्दीन का सिर कट जाने के बाद भी उनका धड इतना सचेत था कि हाथ तलवार चलाते रहे। उन्हें मुहम्मद साहब ने सपने मे कहा था कि "इस्लाम का प्रचार करो।" अन्तत-भरो को मात खानी पडी। उनके शासन काल मे जायस का नाम उजालक नगर

था। परिवर्तन होते-होते उजालक का 'जायस' बन जाना स्वाभाविक है। 'जैश' का अर्थ पड़ाव मानकर कालान्तर में जायस नाम हो जाना भी किसी सीमा तक विश्वसनीय हो सकता है। शेरशाह और बाबर जैसे शासकों का ध्यान जायस ने आकृष्ट किया था।

जायस की महत्ता इस बात में है कि यह इतिहास की अनेक स्मृतियाँ सजाने वाला पुराना कस्बा है। हिन्दी काव्य के अमर शिल्पी मलिक मुहम्मद का घर है। किस्से-कहानियों के रूप में अतीत के गह्वर की अनेक घटनाएँ उभरती-मिटती रहती हैं। नयी पीढ़ी को जायसी से कोई विशेष लगाव नहीं है। पर अवध की संस्कृति में रचा-बसा सूफी साधना का विरह केन्द्रित काव्य ऐक्य, समता और प्रेम के धरातल पर इस प्रदेश को महत्त्वपूर्ण बनाता है। जायस से अनति दूर बसे डलमऊ (निराला की ससुराल) कस्बे में सच्चे प्रेम की पीर के गायक सुकवि मुल्ला दाउद हुए थे। अवध की यह धरती अपनी उर्वरा शक्ति से काव्य की एक उत्कृष्ट परम्परा को जन्म देती रही है।

इस सांस्कृतिक गौरव के संरक्षण की ओर कुर्सियों का ध्यान अभी तक नहीं गया है। कबीर चौरा, लमही, दारागंज, दौलतपुर, अगौना जैसे अनेक नाम हैं। साहित्यकारों के नाम पर हुए सरकारी, गैर-सरकारी प्रयास सिंहासनी सत्ता को मुँह बिराते हैं और आजादी पाने के बाद से इस दिशा की रफ्तार देखकर लगता है कि अभी कोई उद्धारक कदम उठने वाला एवं उठने वाला नहीं है। स्मारक और मूर्तियों को पक्षी अपना बसेरा बना कर गन्दगी करते हैं। मानव प्रयास और सविता की अनुपस्थिति में मिट्टी अपने में उन्हें मिलाने के लिए सदैव तत्पर दीखती है। यह ठीक है रचनाकारों के स्मारक उनकी रचनाएँ होती हैं पर जिस देश के अन्यान्य क्षेत्रों के दिवंगत व्यक्तियों पर स्मारकों का ताँता लगा दिया गया हो वहाँ यह उपेक्षा असह्य है।

जायसी की मृत्यु रामनगर के जंगल में हुई थी। वाचिक परम्परा के प्रमाण के आधार पर अमेठी के राजा रामसिंह ने किसी वृद्ध फकीर से 'पदमावत' में वर्णित नागमती का विरह-वर्णन सुना था। प्रभावित होकर जायसी को बहुत सम्मान देते थे। रानी पदमावती भी जायसी की बड़ी इज्जत करती थी। अब तो वह जंगल कट चुका है और वहाँ की जमीन खेती के काम आती है। सघन वन में साधनारत जायसी जैसे सूफी साधक को जंगली जानवर समझ कर किसी शिकारी ने बाण से मार दिया था। यद्यपि वहाँ शिकार खेलने की मनाही थी। लोकश्रुति अपनी मनगन्त बात जोड़ती है कि बाघ समझकर शिकारी ने मारा था। रामनगर के जंगल में शेर एवं बाघ पाये जाने के सन्दर्भ में इतिहास न तो गवाह बन पाता है और न भूगोल हामी भरता है।

अनहोनी घटित होती है जिसे कोई रोक नहीं पाता। रामनगर में बनी

जायसी की समाधि के दरवाजे पर लिखा है, "जायम नगर मोर अस्थानू, गाँव क नाँव अदावदयानू"। अतिम शब्द म 'उद्यान' की स्पष्ट झलक मिलती है। कभी जायस के नाम के साथ 'उदयान' शब्द जुडा रहा होगा। यह समाधि स्थल भी साहित्यकारा के नाम पर बन स्मारको की उसी परम्परा म है जिसका जिक्र मैंने अभी किया है। मेरा तो ऐसा अनुमान है कि यदि राज्य इस दिशा मे और अधिक अनदखी करेगा तो किसी दिन स्मारका के स्मारक बनवान पड़ेंगे।

*जायसी के जन्मस्थान जायस और मृत्युस्थल रामनगर दाना के आसपास* उदासी का वातावरण है। यदि कोई मदरसा या स्कूल चलाया जाता है तो वह भी बहुत दीनहीन दशा मे है।

तुलना करता हू विदेश के साहित्यकारा के स्मारका स, तो पाता हूँ कि अपना देश अभी बहुत पीछे है। गोर्की, ताल्स्ताय, शेक्सपीयर, गोल्डस्मिथ जैस अनेक नाम प्रसगत लिये जा सकते हैं जिनके स्मारक और सग्रहालय नयी स्फूर्ति के साथ गौरवशाली परम्परा और सास्कृतिक वभव की गाथा कहते हैं। अपन यहाँ समारोहा म बडी बडी घोषणाएँ की जाती है पर उन पर अमल करन वाला कोई नही दीखता।

राजनीति की आँखें अपनी ही आर ज्यादा देखती हैं इसीलिए कदाचित ऐसे परिणाम हमारे सामन आते हैं। लोक छवि का उजागर करने के लिए अपन साहित्य, मस्कृति और परम्परा की सुरक्षा और सम्मान के लिए बहुत कुछ करना शेष है। जायसी एक रस सिद्ध कवि थे। उनकी यादगार हमारे समाज का गौरव है, उनकी कला हमारे राष्ट्र की निधि है। इस महाकवि का घर बना रहता तो कितना अच्छा होता!

# सौन्दर्य का पर्याय है चित्रकूट

सुना है कि राम को गिरिवर चित्रकूट अत्यत प्रिय था। इसीलिए वे सीता के साथ यहाँ रहे थे। सचमुच राम यहाँ रहे थे या कवियों ने केवल कल्पना की है। कल्पना का कोई न कोई आधार तो होता ही है। राम अपना राजपाट छोडकर आत्मीयों से विलग होकर सीता और लक्ष्मण के साथ कठिनाई का समय बिता रहे थे। साथ में कोई परिजन नहीं, पुरजन नहीं। दुख की बात तो यह थी कि जिसे सिंहासन मिलना चाहिए था उसे बनवास मिला। कवियों का तो कहना है कि प्रकृति दुख में और दुख देती है। रानी अपने विरहकाल में चन्द्र-दर्शन नहीं करना चाहती पर चकोर तो मानेगा नहीं। श्रीहर्ष की नायिका तो चन्द्रमा से बदला लेने की एक अनोखी सूझ से काम लेती है। राज रोज चन्द्रमा आ आकर विरह-पीडिता को कष्ट देता था। रानी ने व्यवस्था दी। परिचारिका से कहा कि आदमकद शीशा रानी के कक्ष के सामने रखा जाए। सध्या समय जब चन्द्रोदय होगा, वह अवश्य ही उस दर्पण में आएगा। बदला लेने की यह कल्पना प्रलाप का पर्याय मानी जा सकती है।

चित्रकूट पावन प्रदेश है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सीमा पर ही इसकी स्थिति है। स्टेशन उत्तर प्रदेश में और सारे प्रसिद्ध ऐतिहासिक और धार्मिक स्थल मध्य प्रदेश में हैं। अब तो राम के समय के चित्रकूट की कल्पना करने में एक कठिनाई है। सदियाँ बीत गयीं। अनेक सवत्सर आए और अपनी लीला दिखा कर चले गए। सूर्य पहले जैसा ही निकलता रहा। चन्द्रमा में भी कदाचित् कोई परिवर्तन नहीं आया। समय की मार खाकर पहाड घिस सकता है, नदियाँ अपना रास्ता बदल सकती हैं और मनुष्य के बनाए मार्ग मिट सकते हैं। समय को सब याद रहता है। इसकी प्रकृति अजीब है। इससे कभी पिछली बातें पूछिए तो बोलता ही नहीं। एक गूँगे दर्शक की भाँति देखता रहता है। कुछ नहीं कहता। कुछ कहना ही नहीं। छेडने का कोई असर ही नहीं पडता इस पर।

राम ने हजारों साल पहले देखा था कि चित्रकूट पर असख्य पक्षी क्रीडा करते थे। उनकी भाँति भाँति की बोलियाँ मानव मन को अपनी लीला में शामिल

कर लेती थी। राम ने दृश्य अकेले नही देखा था। सीता को भी दिखाया था। प्रकृति प्रेमी थे राम। वाल्मीकि तो यही कहते हैं। ऊँचे ऊँचे पहाड़ो की सामूहिक स्थिति ही चित्रकूट की रचना करती है। राम आसमान छूने वाले पहाड़ो की सुषमा पर मुग्ध थे। सीता से कहते थे, कि "जरा ध्यान से देखो। प्रकृति की पिटारी हैं ये पहाड़।"

इतना ही नही, अचलराज चित्रकूट अनेक प्रकार की धातुओ से मंडित है। पहाड़ो की चोटियो पर कही तो चाँदी चमक रही है और कही नीलिमा आभासित है। पीला और मजीठ रग भी कही-कही दीख जाता है। पुखराज और स्फटिक की चमक की समता करने वाले हैं ये। केवड़े के मक्खनी फूलों की श्रांति मे लिपटे ये चित्रकूट के शिखर सौदय का इतिहास लिख रहे हैं। उस समय तो राम ने हरिण, बाघ, चीता और रीछ की ओर भी सकेत किया था। रहे होंगे। पशु पक्षी भी अपना हित अनहित जानते है। कालान्तर मे दुर्दिन देखकर कही चले गए होगे। राम के समय मे तो उन्हें प्रकृति ने प्रेम का गुर सिखाया था सो उन्होंने विराध मे भी सगति खोज ली थी। हिंसा का भाव तो पशुओ मे था ही नही। अब तो इस भाव म मनुष्य न पशुओ को बहुत पीछे छोड दिया है।

राम न अपनी प्रिया को सूचना दी थी। यही कि चित्रकूट पर अनेक छाया दार वक्ष हैं। आम, महुआ, जामुन, बेर, कटहल, बेल, सिन्दुक, बांस, आँवला, कदम्ब बेंत, अनार और अरिष्ट (नीम) के वृक्ष चतुर्दिक हरियाली बाँट रहे हैं। कहा था राम न कि "सीते, ध्यान स देखो।" किन्नरो के जोडे प्रीतिपूवक यहाँ घूम रहे हैं। इनके खडग वृक्षो की डालियो से लटक कर चित्रोपम सौदय रच रहे हैं। विद्याधरो की अगनाएँ अपनी क्रीडा की सुविधा के लिए वस्त्रो का डालो पर लटका रखा है।

स्रोत और झरनो को देखने का सुख अलग है। मैंने जो चित्रकूट देखा है वह ऐसा गजपति नहीं लगता जिसके गडस्थल से मद झर रहा हो। भीषण गर्मी से झुलसा हुआ चित्रकूट आसमान से आती हुई असख्य बूदो के वार को झेलता हुआ भी मुझे प्रसन्न दीखा था। आनद पाने म कष्ट झेलना ही सुखमय होता है, भले ही उस सुख की मात्रा कम हो।

कल्पना विलासी कवि का मन यदि कही रम जाय तो वहाँ से हटने का नाम ही नही लेता। राम के समय का चित्रकूट सुगंध से आपूरित है। हवाएँ फूलो को छेड़ती हुई बहती हैं। पुष्पराग धीरे बहने वाली हवा के साथ-साथ जन-जन के आमोद का कारण बनता है और राम सोचते हैं कि ऐसे चित्रकूट पर लक्ष्मण और सीता के साथ अधिक समय बिताया जा सकता है। प्रकृति की सुन्दरता म विभोर राम अपनी प्रिया सीता से पूछते हैं। पूछते हैं कि क्या उन्हें भी चित्रकूट प्रिय लग रहा है? इस पवत की शिलाओ के रग मनमोहक हैं। नीला, पीला, श्वेत,

और रक्तिम रग दशकों का ध्यान अपनी ओर खींचता है। रगीन पत्थरो की रम्य स्थली कवि की दृष्टि में पावन है।

ओषधियो का तो कहना ही क्या ! उनकी आभा म अग्निशिखा का जैसा वैभव है। चपा और मालती कुजो म तो घर का जैसा आभास होता है। पृथ्वी को फोडकर ऊपर उठा हुआ चित्रकूट मनभावन है। उत्पल, भोजपत्र और पुन्नाग के पत्तो से बनी चादर विलासियो के लिए बिस्तर बन गयी है। प्रकृति सभी के लिए दयालु है यहाँ। भयकरता और रुक्षता का नाम नही है। राम ने सीता को यह भी बतलाया था कि विलासियो ने कमल की माला का मसल कर फेंक दिया है। दूसरी ओर वृक्षो की डालें फलभरता के कारण विनम्र हो गयी हैं।

कहाँ तक गिनाया जाए ? फल, मूल और जल से समृद्ध यह चित्रकूट इन्द्र की अलका और कुबेर की पुष्करिणी नलिनी से किसी भाँति कम नही है। यहाँ राम को चौदह साल का समय काटना है। वे सोचते हैं कि ऐसी प्रकृति लीला-भूमि मे लक्ष्मण और सीता के साथ समय कट जाएगा।

चित्रकूट और मदाकिनी, बिना एक के दूसरा सभव नही है। जब से प्रकृति ने चित्रकूट का आलेख लिखा होगा, मदाकिनी भी तभी से ऋजु शैली मे बह रही है। नदी और पहाड का नाता बहुत गहरा है। पहाड के हृदय की रसधार ही जब आकुल व्याकुल होकर फूट पडती है तब उसे नदी नाम मिल जाता है।

सीता को राम ने बतलाया था कि मदाकिनी मे हस और सारस कुलेल करते हैं। नदी मे झर झर झरते हुए फूल तो कितने सुदर हैं। हरिणो की प्यास बुझाने वाली यह सरिता स्वभाव से भली है। इसके घाटो का सौंदय निराला है। यहाँ तपस्वियो की गुफाएँ हैं। सूय नमस्कार करन वाले मुनियो से चित्रकूट की भूमि पावन हो गयी है। तटो पर सघन वक्षों की पाँतें हैं। छाया की सघनता म बहती मदाकिनी चित्रकूट की सौंदय मर्यादा है। ऊँचे-ऊचे कगारो के बीच छुपती बहती मदाकिनी कही तो एकदम लुप्त हो गयी है और कही पहाड की ओर स बाहर निकल आयी है। पवन उल्लसित फूलो को उडाकर इसकी धारा पर तैराता है। खिले हुए फूलो का लहर सतरण चित्ताकषक है।

मदाकिनी मोतियो के समान स्वच्छ जल वाली है। यहाँ के चकई चकवा आनदविभोर हैं। चित्रकूट, मदाकिनी और सीता का साथ पाकर राम सोचते हैं कि जैसे वे वहाँ प्रवासी नहीं हैं। अयोध्या का साथ जैसे छूटा ही नहीं है।

राम का प्रस्ताव है।

सीता उनके साथ मदाकिनी म स्नान करें। वे इस नदी को सीता की सखी कहते हैं। कहते हैं नदी मे अवगाहन करके लाल और श्वेत कमलो को पानी मे डुबोकर जलक्रीडा करें सीता। राम के अनुसार मदाकिनी सरयू है। चित्रकूट को व अयोध्या मानते हैं। वनवासी उनके लिए अयोध्या के पुरवासी हैं। पूरी

अयोध्या ही रच उठी है। और क्या चाहिए ?

चित्रकूट और मदाकिनी का साथ पाकर राम अयोध्या लौटना ही नहीं चाहते। फूल, फल और छायायुक्त हरियाली वाली प्रकृति मे ही वह सारा जादू है जो राम को अपने प्रभाव मे बाँधे हुए है।

राम त्रेता युग मे हुए थे।

वाल्मीकि ने अपनी रामायण कब लिखी, सही सही पता नहीं। पर ऐसा लगता है कि उन्होने केवल कल्पना को आधार बनाकर रचना नहीं की। चित्रकूट के भूगोल को उन्होंने अच्छी तरह जानकर ही रामायण मे उसका वणन किया है। कालान्तर म नदियाँ अपना रास्ता बदल लेती है। एकरसता किसे भली लगती है ! । पहाड भी अपनी ऊँचाई समय के सामने झुका देते हैं। अन्त सलिलाएँ मरु मे भटक जाती हैं। जीवन के लिए यह कोई नयी बात नहीं है।

एक बार मैं उज्जैन गया। कालिदास की शिप्रा देखने का मन था। बडी निराशा हुई। अच्छा होता यदि कालिदास की शिप्रा को न देखता। वह अब अपनी अस्मिता की लडाई लड रही है। सघर्ष को यदि जीवन का दूसरा रूप मान लें तो कहना होगा कि शिप्रा मे जीवन तो है पर पानी नहीं है। और वही नदी को परिभाषित करता है। चित्रकूट के साथ ऐसा कुछ भी नहीं है। न तो मदाकिनी गायब हुई है और न कामदगिरि झुका है। या तो परिवतन की आँधी उतनी नहीं आयी या फिर रामकृपा से चित्रकूट की प्राकृतिक गरिमा अभी क्षीण नहीं हुई है।

कानपुर मे मेरे एक साथी है श्री ब्रजकिशोर दीक्षित। पेशे से तो एडवोकेट हैं पर रुचि से सैलानी। घूमने घामने म खिलाडी जैसी तत्परता उनमे है। और भर्तृहरि त्रिपाठी तो उनस भी चार कदम आगे हैं।

चौबीस जुलाई नवासी की बात है।

मैंने बी० के० के सामने चित्रकूट चलने का प्रस्ताव रखा। बात पक्की हुई कि छब्बीस जुलाई को चित्रकूट एक्सप्रेस स चला जाए। भर्तृहरि के साथ मैं शाम को स्टेशन के लिए रवाना हुआ। रास्ते में लगा कि बरसात होने वाली है। स्टेशन पहुँचने से पहले इतना पानी बरसा कि कपडे गीले हो गए। पता नहीं यह यात्रा का शुभ लक्षण था या अशुभ। घटाघर से किदवई नगर जाने वाले रास्ते की दायी ओर एक मदिर मे शरण ली। भगवान के सामने ही उनकी भक्तिन ने भवें तानी।

जूता बाहर जूता बाहर।

मेरी चप्पलें भीग चुकी थी। बस भी चप्पल पहनकर मदिर के अदर जाने की हिम्मत मैं कैसे कर सकता था। भक्तिन नाराज हो गयी। हडबडी म मदिर की देहरी स मेरी चप्पल छू गयी थी। पर अब तो अपराध हो गया था। बिना

माफी के छुटकारा मिल गया। भगवान की मूर्ति निर्विकार थी। बौछारें मंदिर का फर्श धो रही थी। छतरी असहाय थी। इन्द्र की कोप लीला मुझे चित्रकूट नही पहुँचने देगी, विश्वास बनने लगा था। मन में निश्चय को टालना मुश्किल है।

पन्द्रह मिनट मे बारिश रुकी। बुनछर हुआ। झाँककर देखा। पाया कि पश्चिमी आसमान पर बादल फटने लगे हैं। उनका शामियाना सिमटने लगा है। स्टेशन पहुँच कर देखा कि बी० के० प्रतीक्षा कर रहे हैं। अभी गाडी नही आयी है। दस मिनट देर से आ रही थी। लखनऊ से उसे चलने म देर हो गयी होगी। 'जयहिन्द' स्टेशन पर जंजीर खीच दी गयी होगी। कानपुर है। कुछ भी हो सकता है। यहाँ सभी एक दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। ठीक भी है। अपराध भी तो सभी करत हैं।

चित्रकूट एक्सप्रेस आने ही वाली थी। कानपुर से चित्रकूट बहुत दूर नही है। गाडी पौने सात बजे रात को आयी। आरक्षण की कोई आवश्यकता नही थी। लगभग डेढ बजे गाडी छोड देनी थी। आरक्षित डिब्बे मे यदि सो गए तो सवेरे जबलपुर पहुँच जाएँगे। बरसात के कारण अफरातफरी थी। बैठने की जगह मिल गयी। कानपुर स्टेशन पर यह गाडी पचास मिनट रुकती है। पानी बरसने से उमस बढ गयी थी। गाडी रेंगी तो जान मे जान आयी।

आसमान बादलो से घिरा था।

अँधेरे की परतो को चीरती हुई गाडी की हेडलाइट पटरियाँ पहचान रही थी। दस बजते-बजते सन्नाटा गहराने लगा। वर्षा का प्रथम चरण था। मेढको के स्वर सुनकर लगता था जैसे स्वरैक्य के लिए उन्होंने बडा रियाज किया हो। इस लाइन पर मेरा यह पहला सफर था। युवावस्था के आठ-नौ साल कानपुर मे ही बीते थे पर कभी उधर से गुजरने का अवसर ही नही मिला। बी० के० चित्रकूट एकाध बार घूमने आए थे। उनके अनुभव का सहारा लेकर आगे बढने मे कोई परेशानी नही होगी।

रेलगाडी के डिब्बे मे उजाला था पर बाहर झाँकने पर आँखें निष्फल लौट जाती थीं। नीद के हमले से बहुत कम यात्री बच पाए थे। रास्ते मे पानी नही बरसा पर शाम वाली वर्षा दूर-दूर तक हुई थी। 'चित्रकूट धाम' स्टेशन पर गाडी रुकी। कम सवारियाँ उतरीं। वातावरण भीगा भीगा था। स्टेशन छोटा है। गाडी ज्यादा देर नही रुकी। बी० के० को रेलवे की छोटी-बडी बातों का बडा ज्ञान है। अधिकारी से पता लगाया। चार बेड वाला विश्राम-कक्ष चौबीस रुपये मे चौबीस घंटे के लिए मिल गया। एक ही कक्ष है जो अभी नया बना है। अधिकारी ने बतलाया कि उसमे बिजली नही है। मैंने कहा— 'मोमबत्ती मिल जाएगी?" जवाब मिला—"आप लोग चलें। मोमबत्ती भेज रहा हूँ।"

प्लेटफार्म पर बड़े बड़े गड्ढे खुदे थे। मरम्मत का काम चल रहा होगा। इन गड्ढों म खभो की नीव बनेगी शायद। विश्राम कक्ष एकदम किनारे पर था। रेलवे कमचारी ने ताला खोला। स्विच पर उँगली दबाते ही कमरा रोशनी से भर गया। नया फर्नीचर। स्नानागार, टायलेट आदि साफ-सुथरा था। लगा कि जसे सरकारी कमरा ही न हो। सरकार के यहाँ कौन इतनी परवाह करता है। और फिर उत्तर प्रदश की सरकार! जनता समझती है कि 'सरकार' कोई ऊपर से टपकी चीज है।

मोमबत्ती भी आ गयी।

मैंने सेन्ट्रल टेबल पर जलती हुई मोमबत्ती रख दी। पखा चलने लगा। हवा और नन्ही लौ। लडाई म हारना तो लौ को ही था पर उसने आसानी से हार नही स्वीकार की। भत हरि जी सीमा के लिए घर से भोजन लेकर चले थे। पहले स पता था कि चित्रकूट धाम स्टेशन पर भोजन की व्यवस्था नहीं होगी। पेयजल की सुविधा मिल गयी थी। बिजली के पख से मच्छरो का प्रकोप बाधा नहीं पहुँचा पाया। मानव जीवन सुविधाभोगी होता है। जितनी सुविधाएँ उसे मिलती जाती हैं, उतनी से उसका मन नही भरता है। सडक पर चलने वालो को पगडडियो का अतीत बहुत कम याद रहता है।

कहन के लिए चित्रकूट धाम है। छोटा सा रेलवे स्टेशन। चाय की साफ सुथरी दुकान भी नही है। पर किया क्या जाय? हर व्यक्ति सरकार को दोषी ठहराता है। स्वय वह क्या कर रहा है उसे कभी नही दीखता। और वह देखने की कोशिश भी तो नहीं करता।

सबेरे नीद देर से खुली। बरसात शुरू हो गई थी। झीनी झीनी फुहियो ने वातावरण को कुहरिल बना दिया था। कमरे से बाहर निकल कर देखा तो सिर झुकाए शीशम (शिशपा) के वक्ष कतार बाँधे खडे थे। गहरी हरियाली ही घनीभूत हो गई थी। बाल्मीकि याद आए। उन्होंने शिशपा का वणन किया है। उस समय की बातें यह वृक्ष जानता होगा। उनकी पता नहीं कौन सी पीढी इस समय सामने है। बहुत पुराने नही हैं ये शीशम। दस पन्द्रह साल की उम्र होगी। पीपल, आम और नीम तो पूरे उत्तर प्रदेश मे लगभग सभी जगह मिलते है।

चित्रकूट की वनश्री देखने के लिए स्टेशन से आगे बढे। पहले दो रुपये का रिक्शा फिर तीन रुपये प्रति सवारी का टेम्पो। आगे पुन तीन रुपये का रिक्शा। मध्य प्रदेश की सीमा मे पहुच गए। रास्ता कोई अलग किस्म का नहीं था। दुबली पतली सडक जो अपने घावो को ढोने के लिए अभिशप्त थी। दोनों ओर गाँव का दृश्य। कच्चे-पक्के मकानो की तस्वीरें धरती के फलक पर उभरी हुई। पुराने घरो की खस्ता हालत देखकर लगता था इतिहास ही इधर उधर रूप धारण कर खंडहर बना बठा है। यहाँ दिल्ली और बम्बई की ऊँची ऊची भव्य

इमारतों को याद करना ठीक नहीं है। कोई समता नहीं है दोनों में। यदि पहाड़ को पता होता कि वह धूलिकणों से मिलकर ही बना है तो शायद वह पहाड़ न होता। मन्दाकिनी की एक धारा रास्ते में मिली। दौंगरा तो शायद पहले ही गिर चुका था। बरसात का मौसम था ही। रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं। मन्दाकिनी में डाबर पानी बह रहा था। साथ में था खर पतवार, कूड़ा करकट। कोई विशेष बात नहीं दीखी यहाँ जो मंदाकिनी के प्राचीन रूप की उजास को प्रमाणित कर सके।

राम का समय याद आना स्वाभाविक था। वे तो पैदल ही गए थे। उनके सामने समय बिताने की समस्या थी। और चित्रकूट में उनका समय अच्छा बीता था हमारे महाकवियों के अनुसार।

जहाँ से चित्रकूट की परिक्रमा के लिए टैक्सी, जीप या बसें जाती हैं, उसी नुक्कड़ पर खड़ा हूँ। हावभाव से बसवालों को पता लग जाता था कि हम घुमक्कड़ी हेतु आए हैं। फिर तो आवाजें आनी शुरू हो जातीं। जा रही है, जा रही है, चलिए, चलिए। भरभरा कर देहात से आए तीर्थयात्री बस में भर जाते। थोड़ी देर में कण्डक्टर आवाज लगाता—नहीं जाएगी, नहीं जाएगी। खचड़ा बसें जिनके पुर्जे ढीले हैं। कहा जा सकता है कि इनमें हार्न छोड़कर सब बजता है। यही सहारा है यहाँ। कम सवारियाँ हैं तो जाने से मना कर देंगे। ज्यादा सवारी इनकी समस्या नहीं हैं। सामान की भाँति डिब्बे में तह लगाते जाएँगे। सवारी पिनपिनाती रहेंगी पर इससे क्या होता है। "जिसे नहीं जाना है, उतर जाए गाड़ी से"—आवाज सुनकर सवारियों में चुप्पी छा जाती। कौन उलझे इन गाड़ी वालों में। अपनी इज्जत दाँव पर लगाने से फायदा क्या?

यहाँ चारा और कीचड़ है।

पान की कई दुकानें हैं। पनखौवे बेतरतीब खड़े हैं। खीस निपोर कर भद्दे मजाक करते हैं। युवा, वृद्ध सभी उम्र के ग्राहक हैं। पीकों की पिचकारियों से बचे न रहिए तो कपड़े पर डिजाइन बन जाए। पान खाने वाले आदमी देखकर थूकते हैं। यह थुक्काफजीहत तो बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, अयोध्या आदि नगरों में सभी जगह है। जब सभी थूक रहे हैं तो कौन इन्हें रोककर बला मोल ले अपने सिर! इस क्रिया में पढ़े बेपढ़े में कोई भेद नहीं होता है।

देखा कि एक कुत्ते को एक तगड़ा सुअर चुनौती दे रहा है। क्या जमाना आ गया। कोई पत्रकार यहाँ होता तो उसके लिए यह दृश्य खबर में बदल जाता।

मेरी आँखें हरिणों की आँखें खोज रही हैं। अपनी कमनीयता गँवाने वे यहाँ नहीं आएँगे। एक जीप तै की गई। ड्राइवर ने दस दस रुपये वसूले। वास्तव में चित्रकूट पहाड़ों का एक समूह है। दूर दूर पर राम, सीता और हनुमान की स्मृतियों को सजोने वाले स्मारक हैं। सबसे पहले जीप हम लोगों को कामदगिरि

की ओर ले गयी। इस पहाड की परिक्रमा करनी होगी। अपने बूते का नहीं है।' बी० के० अपनी आपबीती सुनाते हैं। कभी अपने बच्चे को लेकर आए थे यहाँ। कई कोस की परिक्रमा करते करते थक गए। एक मोटा कम्बल लिये थे। थकावट ने इतना थका दिया कि सोचने लगे कि या तो कम्बल फेंक दिया जाए या फिर बच्चा। पता नही अचानक कहाँ से कोई प्रेरणा आई कि मुसीबत के समुद्र को पार कर पाए। आज भी हमारे जनमानस पर राम कृपा का अपार प्रभाव है। जब कही काई असभव बात होती है, प्रभु की कृपा ही याद आती है। यहाँ का तिनका तिनका तो अविश्वसनीय हो चला है।

कामदगिरि बहुत ऊचा नही है। यह वही कामदगिरि है जिसकी घाटी म अवध की सभा बैठी थी कभी त्रेता मे। शासन की सत्ता सँभालने के लिए मत्रणा हुई थी। राम का वचन और भरत की निर्लिप्तता आज के सत्तालोलुप वातावरण मे अजनबी से लगते हैं।

हरी-भरी वनस्पतियो से ढका है। वृक्ष बहुत ऊँचे नही हैं। जगली झाड हैं। कुछ तो जाने पहचाने हैं पर ज्यादा ऐसे हैं जिन्हे मैं पहली बार देख रहा हू। तलहटी मे पूजा पाठ का सामान बिक रहा है। धम और कमकाण्ड से पेट-पूजा करने वालो की दृष्टि यात्रियो पर है। गाइड की मुद्रा म वे इतिहास और पुराण की गाथा बखानते हैं। मेरा मन इन गाथाओं मे उतना नही रमता जितना कहने वालो की शैली मे। शली यात्रियो को मोहती है। जुबान के जादू से कठदिल को भी प्रभावित किया जा सकता है। दूर दूर के गाँवो स आने वाली धमभीरु जनता पर इस जादू का प्रभाव गहरा पडता है। वह अपना सर्वस्व लुटाने के लिए तैयार हो जाती है। उसका भोला मन मीठी जुबान के भीतर जहर को पहचान ही नही पाता है।

चित्रकूट परिक्रमा की शुरुआत प्रकृति से होती है। और मेरी समझ से उसका अत भी प्रकृति म ही होता है। कई पवतो का समवेत अपनी नैसर्गिक छवि से दशको को आनदित कर रहा है। नही जानता कि इस निसग सौदय से धम विश्वासी जनता कितना प्रभावित होती है। इतना तो देखा है मैंने कि शीतल छाया, इठला कर झरते हुए जल प्रपात, सघन वन मे रास्ता खोजती नदी घनीभूत हरियाली के स्तूप देखकर कोई भी दशक थोडी देर के लिए रुक सकता है। प्रकृति के पास आपको अचभित करने के लिए बावन उपाय हैं। वह रूपवती है बलवती है, परिवतनशीला है। रूप और शक्ति का साथ यहीं निभता भी है। प्राणियो की स्थायी सगिनी है प्रकृति। वे भले ही इसका साथ छोड दें पर यह तो ममतालु है दयामयी है।

कामदगिरि मनोकामना पूण करने वाला है। मेरा विश्वास तो इतना भर था कि उसके प्राकृतिक सौन्दय को देखूं। कामनाएँ कहाँ तक पूरा करेगा

कामदगिरि ! इसका एक नाम कामतानाथ भी है। धार्मिक मान्यता के आधार पर कामदगिरि के ऊपर चढ़ना मना है। लगभग छ-सात किलोमीटर की इसकी परिक्रमा की जाती है। सीताकुण्ड से इसकी दूरी केवल तीन किलोमीटर होगी। मान्यता है कि रामचन्द्र जी ने अपने वनवास का अधिक समय यहीं बिताया था।

प्राचीनकाल से चित्रकूट तपस्वियों, त्यागियों और भक्त विरक्त महानुभावों की भूमि रही है। इसी कारण तपोभूमि कहते आए हैं लोग इसे। पहाड़ों की तलहटियों का एकांत आज भी हम तपोभूमि का अनुभव कराता है। जीप में कुल आठ-दस सवारियाँ रही होंगी। मैं कामदगिरि में ज्यादा देर लगाना नहीं चाहता था। पुजापा चढ़ाने का निमित्त यहाँ भी लोगों ने खोज रखा है। एक अधेड़ उम्र के दम्पति कामदगिरि की ओर एकटक ताके जा रहे हैं। पता नहीं किस सोच में डूबे हैं। उनके साथ कोई बच्चा नहीं है। ज्यादा भीड़भाड़ नहीं। गिने चुने यात्री दीख रहे हैं। शायद इसीलिए ज्यादा पुजापा भी चढ़ नहीं पाता। पति पत्नी ने सादर नमन किया कामदगिरि को और प्रदक्षिणा के लिए चल पड़े। अनुष्ठान में निश्चय अनिवार्य है। निष्ठा के द्वारा मनुष्य बड़े बड़े कार्य कर डालता है। और एक बार किए गए दृढ़ निश्चय को कोई रोक भी नहीं पाता है। मैंने गुप्तगोदावरी के सम्बन्ध में अनेक बातें सुनी थीं। जहाँ अवसर मिलता है भर्तृहरि जी संस्कृत के श्लोक अलापने लगते हैं। आचार्य मुख से देववाणी कर्णप्रिय लगती है। गुप्तगोदावरी देखने में सभी की उत्सुकता है। कामदगिरि से वहाँ तक का मार्ग थोड़ा लम्बा है। जीप अस्सी किलोमीटर की रफ्तार से भागी जा रही थी। आसमान से झरती फुहारों को सिर उठाए पहाड़ ऊपर ही झेल रहे थे। बूँदों के तारतम्य को हवा के झोंके झुकाए दे रहे थे।

पतली सड़क के दोनों ओर ग्राम संस्कृति की छाप दीख जाती थी। कहीं कोई ग्रामबाला पानी का मटका टेंट पर रखे भालू का चलना देख रही है। कोई नंग धड़ंग बच्चा अपनी बकरी खदेड़ रहा है। किसी मोड़ पर असमर्थता की हथेलियाँ पैसे की बाट जोह रही हैं। आँख मिचौनी खेल रही है बरसात। छिपती-बरसती नजर आती है। कपड़े गीले हो गए हैं। अच्छी तो लग रही है पर परेशान कर रही है। सुखद पीड़ा जीवन के इतिहास का अधूरा वाक्य भले हो पर वह स्मृति की धरोहर बन जाती है। इस धरोहर को हम किसी अन्य को देना नहीं चाहते। एक चतुर सुजान कृपण की भाँति इसे सहेजे हुए अँधेरे में भी ज्योति का आभास हम सदैव पाते रहते हैं।

गुप्तगोदावरी पर्वत से निकलने वाली जलधारा है। लगभग एक घण्टे का समय है। छोटी छोटी सीढ़ियाँ ऊपर की ओर गई हैं। हरे भरे पेड़ों से पहाड़ घिरा है। चढ़ती हुई सीढ़ी की दाईं ओर से पतली जलधारा नीचे की ओर बह

रही है। उसके प्राकृतिक रूप को स्थान स्थान पर बाँधा छांदा गया है। धारा मे त्वरा है। पहाड की गोद से झरती हुई समतल धरती पर सरक गई है। एक पुजारी जी बतलाते हैं—"नासिक से आई है गुप्तगोदावरी, भूमि के नीचे-नीचे। सब भगवान की माया है।" विश्वासी जनमानस के लिए इतना बहुत है अचम्भित होने के लिए। इस प्रकार की अनहोनी प्राय सभी तीर्थों के यथार्थ म लिपटी हुई है। और लोक ही इस ढोता भी है। धारा के सहारे आगे बढते गए। कुण्ड मे स्नानार्थी नहा रहे थे। यात्री देश के सभी भागा स आते हैं यहाँ। विदेशी पयटक कम दीखते हैं। लगभग सौ फुट ऊपर चढ जाने पर एक गुफा मिलती है। दो प्रस्तर शिलाएँ ऊपर ऐसे मिली हैं कि नीचे काफी खाली जगह बच गई है। अन्दर जाने का बहुत सँकरा रास्ता बनता है। टेढे होकर जाना पडता है। भीतर का भाग काफी प्रशस्त है।

गुफा अब प्राकृतिक नही है। मनुष्य के करतब ने उसे अपनी छनी और हथौडी से सवारा है। वैज्ञानिक चकाचौंध भी वहाँ है। पडागीरी तो बिलकुल नही दीखी। श्रद्धा के आधार पर जा जहाँ चढा दीजिए वही उचित है। आप से कोई कुछ कहेगा नही। रोशनी के लिए बल्ब और ट्यूब दिन म भी जलते रहते हैं। गुफा मे एकाध स्थल पर ऊपर से पानी रिसता हुए दीखा। हाँ, फश तो बहुत ही गीला था। नगे पैर गीले फश पर चलना आसान नही था। गुप्तगोदावरी की यह गुफा अत्यत रमणीक थी। बतलाते हैं कई यात्री कि पहले यह ऐसी नही थी। वहाँ देवी देवताओ म शकर की महिमा सबसे अधिक जान पडी। त्रिमुखी और पचमुखी शिवलिंग भी देखने को मिले।

गुफा के अ दर का प्रब ध धार्मिक व्यक्तियो द्वारा ही किया जाता है। यात्री दशन करके प्रस न होते हैं। यह पहाड भी चित्रकूट का एक हिस्सा है। सीढिया से उतरते समय बिसातो की छोटी मोटी दुकाने थी। लैया पट्टी खरीदकर होशियार न रहिए तो हनुमान जी के परिवार वाले छीन कर उडनछू हो जाएँगे।

गुप्तगोदावरी से हम लौटने लगे थे।

मन रह रहकर पिछाडी भाग रहा था। जीप का इजन अपनी अश्वशक्ति के बल पर बेतहाशा आगे की ओर दौड रहा था। अब अनसूया के मन्दिर को देखते हुए वापस लौटना था। वहाँ भी करतबी मनुष्य ने अपनी छाप छोडी है। पहाड पर बना है यह मन्दिर। रहा तो बहुत पहले से होगा पर उसमे नयापन इधर ही जुडा है। मूर्तियो की शक्ल बहुत बखान के योग्य नही है। कलाकार की आलोचना करना मेरा उद्देश्य नही है पर अत्रि और सती अनसूया आदि की मूर्तियाँ बहुत प्रिय नही लगी। कला का अनगढ प्रयोग था। श्रद्धालुओ के लिए इतना भी बहुत है। धमप्राण यात्री दशन से पूव सिरदा म विश्वास रखता है। वहाँ तक और

अभिरुचि की उत्कृष्टता का प्रश्न पूछा ही नही जा सकता। मन्दिर में देव और देवी का सम्मान सीढ़ियो को प्रणाम करते हुए शुरू करते हैं यात्री।

यह वही स्थान है जहाँ तपस्विनी अनसूया ने सीता को उपदेश दिया था। अत्रि ने वनवासी राम को अपनी वृद्धा पत्नी अनसूया का सक्षिप्त परिचय देकर उन्हें महिमामण्डित किया था। कथा बतलाई थी कि एक समय देश मे लगातार दस वर्षों तक वर्षा ही नहीं हुई। सभी जीवधारी भूख प्यास से व्याकुल हो उठे। धरती रुदन करने लगी। उस विपत्ति के समय अनसूया ने कठोर तप करके चित्रकूट मे मदाकिनी की धारा बहाई। अनेक पेड पौधे उगाए। धरती पर जीवन पुन लौट आया। सती साध्वी की महिमा से ऋषियो का सताप दूर हुआ था।

तपस्विनी अनसूया को क्रोध नही आता था कभी। यद्यपि बुढापे के कारण उनका शरीर जर्जर हो गया था पर सीता की आवभगत मे उन्होंने कोई कमी नही आने दी। उन्होंने सीता से लोकाचार की अनेक बातें कही थी। आभूषण, अगराग और बहुमूल्य अनुलेप सती अनसूया ने सीता को दिए थे।

ये कथाएँ अतीत के फलक पर चित्रित है।

विस्मृति के अन्धकार मे रह रहकर कुछ चमक जाता है। मैं उन कथा सूत्रो को एकत्र करने की कोशिश करता हूँ। तालमल ठीक करता हूँ। जो वतमान मानव के हाथ से छिटक कर अतीत बन गया, वह कभी पकड मे आता है क्या? यदि थोडा-बहुत आ भी जाए तो क्या?

अनसूया के मन्दिर मे बडी शान्ति है। घण्टा घडियाल मौन है। यहाँ कोई हर हर, बम-बम नही बोल रहा है। कला के जो भी सौष्ठव यहाँ प्राप्त हैं, यात्री उन्ही मे खो जाते हैं। मन्दिर बहुत बडा नही है।

पहाड की उपत्यका मे यह आश्रम है।

फुहारें पड रही हैं। अब तो घनघोर वर्षा होने लगी। कुछ समय और मन्दिर मे रहने का अवसर मिल गया। तुलसी बाबा ने लिखा है कि हाथी, सिंह, सप, शार्दूल, हरिण, सुअर और बन्दर आदि अपना वैरभाव भूलकर यहाँ रहते है। हाथी, सिंह तो कही दीखते नही अब। हाँ भाँति भाँति की चिडियाँ अपनी बोली और रग रूप से लुभाती हैं। वन म ही तो इन्ह सही आजादी मिलती है।

यहाँ से थोडी दूर पर स्फटिक शिला है। रूपाकार मे काफी बडी है। कवियो ने इसके बारे मे अतिशयोक्ति की है। स्फटिक का रूप तो इसमे नही है। सामान्य शिला जसी ही है। क्योंकि इसका सम्बन्ध राम से जुडा है इसलिए यात्रियो के मन म इस विशाल शिला के प्रति पूज्यभाव है।

मदाकिनी म डाबर जल बह रहा है। आकाश से चुई हुई निमल बूदें धरती छूते ही मटमैली हो जाती हैं। थोडा समय लगेगा, ये पुन निमल हो जाएगी।

पवत प्रदेश का जल वैसे भी बहुत स्वच्छ होता है। यहाँ नदी की गति सर्पिल है। और पानी का सप ही इसमें बह रहा है इस समय लहरें लेता हुआ। हनुमान-धारा या सीता कुण्ड मे प्रकृति अपने उच्छल आवेग के साथ नहीं उपस्थित होती। जहाँ थोडी-बहुत आबादी है, वहाँ का माहौल उतना सुथरा नहीं है। ऊँची-नीची भूमि के अनुसार पतली सडक भी अपने को अनुकूलित करती है।

चित्रकूट का परिमण्डल पीछे छूट रहा है। जीप लौट रही है। अनेक दृश्य देखने के बाद भी मन भरा नहीं है। प्रकृति में नवता है। परिवतन के रथ पर सदव चलती। है यह चित्रकूट का आसमान थोडा साफ हुआ है। बादलो की फौज कहीं विश्राम करने चली गई है। वनस्पतियाँ धुली धुली लग रही हैं। कुछ कच्चे-पक्के मकान दीखने लगे हैं। कदाचित् हम वहीं पहुँच गए हैं, जहाँ से चले थे।

# वागातोर एक दूसरा भारत है

अपना देश भारत अनक खूबियो और विशेषताओं के लिए विश्व मे प्रसिद्ध है। कई सन्दर्भ तो ऐसे है कि सचाई पर भी विश्वास नहीं होता। मैं ताजमहल और कुतुबमीनार की बात नहीं कर रहा हूँ। वागातोर गोवा का एक समुद्र-तट है। वहाँ के दृश्य, बदलते माहौल और झाग भरी लहरों के साथ देशी विदेशी सैलानियों एव पर्यटकों का ऐसा रिश्ता है जो थोड़ी देर के लिए ही सही, सभी को चौंकाता है। कहते सुना गया है कि गोवा म मदिरा, समुद्र तट और एक बहुत पुराने चर्च के अलावा है क्या? पर अगणित चेहरे लालायित रहते हैं कि गोवा देख लेते तो जनम सार्थक हो जाता। वहाँ पहुँच कर व्यक्ति मौज मस्ती की दुनिया मे रम जाता है किसी को किसी से कोई मतलब नहीं। अपनी-अपनी मन्ही दुनिया म सभी खोए हैं। वहाँ केवल जिन्दगी दीखती है, मौजो की लहरो पर उतराती हुई, झूम करके पुन झूम उठने की लालसा भरी उमंगें लिये हुए।

स्वीडन, इटली, अमेरिका और फ्रांस आदि से आए हिप्पी कल्चर के प्रेमियो के झुण्ड समुद्री रेत पर घूमते फिरते, नगे नहाते और बैठकर समय काटते मिल जाएँगे। वागातोर से थोड़ी दूर पर अजुना समुद्र तट है। वहाँ भी ऐसे ही स्त्री-पुरुष सैलानी मिल जाएँगे। पश्चिमी देशो के युवक एव युवतियो का यह शौक हजारों मील का सफर करके भारत आया है। कौन-सा आकर्षण है वागातोर तट मे, यह तो वही जानें पर पहाड़ी खोहो के पास खुले मदान मे रति प्रसगो का यह नगा सिलसिला काफी दिनो से चला आ रहा है। पुलिस टोकती नहीं। भारतीयो के लिए यह तमाशा है। नगे पुरुषो एव स्त्रियो को देखकर यदि आप हँस दिए तो समझिए खैर नहीं। अगर आपका कमरा उधर घूम गया तो समझिए आपके ऊपर शामत आ गई। वे नगे स्नान कर रहे है। स्नान के बाद बालू पर लेटे हैं पास ही मदिरा की बोतलें उनका गम गलत करने के लिए अपना मुह खोले हैं, उतान लेटी हुई युवती सेक्स की कोई पुस्तक पढ रही है। ऐसे अनेक दृश्य हैं। प्रेमी अपनी प्रेमिका के घुघराले बालों म पता नहीं क्या खोज रहा है। इस सारे क्रियाकलाप म एक लापरवाही है, एक तल्लीनता मे बाँधने वाला शौक है।

पास से गुजरते हुए हिन्दुस्तानी जोड़े आँख बचाकर उन्हें देख लेते हैं पर मुद्रा ऐसी बनाते हैं कि जैसे उन्हें देखा ही न हो। क्या करें, जानबूझकर अपने सिर बला कौन मोल ले। सागर तट से सटा हुआ वागातोर का किला काफी ऊँचाई पर है। किसी बुजुर्ग की भाँति शांत भाव से चुपचाप सारा दृश्य देख रहा है। अगणित सध्याएँ और प्रात काल आए और गए पर किले के बड़प्पन पर कोई आँच नही आई। सुदूर पश्चिम से आने वाले जहाजों को किले के ऊपर से देखा जा सकता है। लोगो को कहते सुना है कि वागातोर का यह किला शिवाजी का बनवाया हुआ है। नीचे समुद्री पाथर की खोहो में उगे केवड़े की धारदार आर जैसी नुकीली पत्तियो की चुभन वातावरण मे रोमांच भर रही है।

लक्ष्मी बार एव रेस्त्रा के पास बड़ी चहल-पहल है। सभी आयु वर्ग के हिप्पी यहाँ बैठे मिल जाएँगे। सवेरे आठ बजे से आवाजाही शुरू हो जाती है। ग्यारह बजे तक जिन्हें आना होता है, आ जाते हैं। विदेशी पर्यटको के चेहरे बोलते हैं कि उनके पास समय ही समय है, कहाँ गुजारें। देशी घुमक्कड़ो के पास समय की कमी होती है इसलिए वे प्रतीक्षा मे रहते हैं कि कब दस ग्यारह बजें और बेपर्दा इसानो की छवियाँ देखने को मिलें। यहाँ सस्ती महँगी मदिराओं की लहराती नागिनें पियक्कड़ो के दिलो को अपने कसाव मे कसती जाती हैं। फिर तमतमाए चेहरो को लहराता सागर नामल करता है। तीन चार घण्टो का मनोरजन इन सैलानियो को आनद विभोर कर देता है। बार मे काम करने वाले लोगो का स्तर अति सामान्य है। उनके कपड़े लत्ते अत्यत साधारण हैं। समय की मार से पिटे हुए लगते हैं। मालिक सैलानियो से पैसा निकालता है, मोटा होता जाता है। इन्हें तो बस कम की चाकी की चलाते जाना है। प्राप्य लाभांश का अनुपात बहुत कम होता है। इनके दबे रूखे चेहरे ही इस बात के गवाह हैं।

केवड़े के झुरमुट के पास एक ऊँची मचान बनी है। शायद बिजली विभाग ने अपनी सुविधा के लिए बनाई हो। बड़े बड़े फोकस लगे हुए हैं। हलके लाल रंग के पत्थरो के टीलो ने लम्बे बालुका प्रान्तर को घेर रखा है। एक ओर है टीलों का अपार जमघट, दूसरी ओर फेनिल हासयुक्त ऊँची ऊँची सागर लहरें। थोड़ी दूर पर तीन हिप्पियो का एक ग्रुप बैठा है। सभी नगे हैं। इनमे दो पुरुष एक स्त्री। तीनो धूप ले रहे हैं। अंग्रेजी की एकाध पत्रिकाएँ जिनका नाम दूर से पढ़ा नही जाता, चटाई, छोटी शीशी जिसम मालिश के लिए कोई द्रव हो शायद, मदिरा की बोतल और पास ही रखा है उतारे हुए कपड़ो का ढेर। फतुही और बेतुके पजामे जिसे ये सलानी अपना शृगार-वस्त्र मानते है। स्त्री पीठ के बल लेटी धूप सेवन कर रही है। सिरहाने बैठे दोनो युवा पुरुष बातें कर रहे हैं। कभी-

कभी एक दूसरे की ओर देखकर दांत निपोर देते हैं। आंख मेंत हैं कैमरा जल्दी ही दूसरी ओर घूम जाता है।

खोह बनाने वाले प्रस्तर खण्डो पर सागर की उत्ताल लहरें अपना सिर पटकती रहती हैं। लगातार यह प्रक्रिया जारी रहती है। सागर जब कभी आराम की मुद्रा में होता है तब भी कुछ न कुछ हलचल बनी रहती है। झाग उगलती लहरो के थपेडो से प्रस्तर खण्डो पर समुद्र फेन जम गया है। बहुत सख्त है। नाखून से खुरचने पर नही निकलता। दमेक गज दूरी पर समुद्र के अन्दर एक बडा टीला उगा है। काई की फिसलन से बचती हुई महिला एक टीले के ऊपर पहुंच गयी है। निवस्त्र खडी है। सिर पर हैट रखा है। सागर और आकाश की अनन्त नीलिमा को ओर निहार रही है। उसका पांच छ वष का लडका ऊपर बढने की कोशिश कर रहा है। अभी उस ऊंचाई पर पहुंचने मे उसे देर है। अपनी मां के साथ वह सागर स्नान कर चुका है। उसका बाप नग घडग रेत पर बैठा कोई किताब पढ रहा है। उसका ध्यान अपनी पत्नी पर है। पत्नी उधर स निश्चिन्त है। यह निश्चिन्तता लापरवाही की सीमा तक है। नीलिमा का अनन्त विस्तार नापती उस बाला की आंखें पीछे देखती ही नही। पीछे रखा भी क्या है!

अभी अभी सागर स्नान से एक युवती लौटी है। भीगी देह रेत पर फला देती है। कुछ देर बाद देखता हूं कि उसने अपनी आंखें बन्द कर ली हैं। कदाचित सो गयी हो। मौसम खुश्क है। जाडे का नाम नही। हलके कपडो से काम चल रहा है। लखनऊ के चिकन का मौसम। यहां तो उसकी याद भर आ सकती है। किताबें यहां पढते पढते सो जाने के लिए पढ़ी जाती हैं, या फिर समय काटने के लिए गप शप के मूड मे। इस बाला के पास एक स्त्री और दो पुरुष पहले मे ही बैठे हैं। दार्शनिक मुद्रा बनी है। कोई किसी मे बोल नही रहा है। कपडा बेचने वाली एक लडकी पता नहीं कहां से आ गई। गट्ठर खोल दिया है। बैठी हुई नगी औरत के पास बैठ गयी। गहरे सांवले रग की लडकी झमाझम कपडे निकाल कर दिखाती जा रही है। रेडीमेड कपडे। हिप्पियो की पसद के कपडे लायी है। बांहें ऊपर करने के लिए कहती है। नापती है। दूसरी कपडा निकालती है। फिट हो जाता है। मोल ताल होने लगता है। शायद दाम ज्यादा मांगा जा रहा है। गट्ठर समेट कर लडकी चलने लगती है। एक पुरुष हू हू, ही ही करता है। दूसरा पुरुष गुमसुम है। कपडा खरीदने वाली स्त्री ने बेचने वाली को लौटने का इशारा किया। वह पुन नही आयी। सभी एक दूसरे को पहचानते होंग। रोज-रोज का मामला है। कोई किसी से कितना छिपेगा। स्थानीय लोगो से पता चलता है कि इस सागर-स्नान के साथ विदेशी माल की स्मगलिंग भी चलती है। यहां कही पुलिस का अता-पता नही है। सादी वर्दी म हो तो मैं नही कह सकता।

इस वक्त गर्मी लग रही है। अपने सामने मेज पर बर्फ की एक सिल्ली रखे है। कभी-कभी क्षण-दो क्षण में सिल्ली पर हथेली रख देती है। रेस्त्रां के किनारे नारियल का ढेर लगा है। विदेशी महिला के पैरों के पास एक झबरा पिल्ला सोया है। सिल्ली की ठंडक पहुँच रही है शायद। आसपास दूर तक नारियल के ऊँचे ऊँचे पेड़ गहरे सागर तट पर खड़े होकर आसमान की ऊँचाई नाप रहे हैं। यद्यपि दोपहर होने का है पर चहल-पहल बनी हुई है। स्नान से लौटे हुए मुसाफिर रेस्त्रां में विश्राम कर रहे हैं।

पास पड़ी पत्थर की शिला पर चिलमें पी जा रही हैं। गाँजा, चरस, स्मैक कुछ भी हो सकता है। उस ग्रुप में बैठे हुए सैलानी फूँक मारने की तत्पर दीख रहे हैं। समीप ही मरियल कुत्तों की पंचायत लगी है। सभी हाँफ रहे हैं। हड्डी के एक टुकड़े पर समझौता नहीं हो रहा है। कई गिद्ध दृष्टियाँ टोला से झाँक रही हैं। दूर पहाड़ पर कास दीख रहा है। त्याग की एक नयी ऊर्जा भर जाती है मन में। अपने स्कूटर ड्राइवर से पूछता हूँ—"भाई, इस नंगी सभ्यता के लिए यहाँ के स्थानीय लोग कुछ कहते नहीं?" "साहब, एक बार पुलिस में शिकायत की गयी थी। गाँव की इज्जत का सवाल था। नंगे स्नान पर पुलिस ने रोक लगा दी। थोड़े दिन बाद धंधा फिर शुरू हो गया। एक बार चल पड़ा तो चल पड़ा, कौन पूछता है?" अजुना वागातोर जैसा नहीं है। कालगुट भी वैसा नहीं है। पर हाँ, इत्र, कैमरा, ब्लेड, रूमाल और जाने क्या-क्या यहाँ बिकता रहता है। कुछ तो विदेशी के नाम पर और बहुत कुछ देशी वस्तुएँ विदेशी के भाव आती जाती रहती हैं। विदेशी का क्रेज अभी भी अपने देशवासियों में है। अजुना का सागर-तट वागातोर जैसा नहीं है। सभी तटों की अलग-अलग भंगिमाएँ हैं पर वागातोर जैसी नैसर्गिक कृति को विकृति के कीड़ों से बचाना चाहिए। सभ्यता का लम्बा रास्ता पार करके हम जिस मंजिल तक पहुँचे हैं, कहीं उससे पीछे तो नहीं लौट रहे हैं।

समाज की, परिवार की और देश की समस्याओं की तस्वीर यहाँ नहीं उभरती। यह दुनिया ही कोई दूसरी है, यह भारत ही कोई और है।

वागातोर तट पर भीड भाड बिलकुल नहीं है। देशी पर्यटक विदेशियों को घूर-घूर कर देखते हैं। उनके लिए यह अनोखी दृश्यावली पता नहीं कब आँख से ओझल हो जाए। कहते सुना एक देशी सैलानी को कि कोणार्क और खजुराहो में क्या रखा है। कंकड पत्थर की बेजान मूर्तियाँ एक जगह स्थापित हैं। ये तो घूम फिर रही हैं। सजीव निर्जीव में तो फर्क होता ही है। पत्थर में प्राण प्रतिष्ठा करने का कष्ट कौन उठाए। और यह कला सभी को आती भी तो नहीं।

चार विदेशी सैलानियों का समूह बार की ओर जा रहा है। इनकी नित्य लीला सम्पन्न हो गयी लगती है। पर ऐसा नहीं है। ये पुन बार में बैठ गए हैं। दूर से दीख रहे हैं। अपना कैमरा सँभालते हुए विश्वनाथ मिश्र अचरज करते हैं पर इससे क्या ! सैलानियों में वीतराग होने का भाव है। उन्हें किसी की भी परवाह नहीं है। मेरी इच्छा हुई कि समुद्र के अन्दर वाले ऊँचे टील पर बैठें। ऐसे टीले कई हैं। थोडी देर बैठकर अरब सागर का फैलाव अनन्तता की ओर विस्तारित कर रहा है। यह फैलाव आँखों के निक्षेप को सीमा में बाँध रहा है। महासागर कितना शक्तिशाली है ! इस शक्ति में वैभव की असीमता छविमान है। दूर, बहुत दूर लहरों के झूलों पर झूलती मछुआरों की नावें सागर का ही एक अंग लगती हैं। कितने दुलार से सागर झुला रहा है। अनुशासन की सीमाओं में यह कितना तो सहज सरल है। क्रोध की मुद्रा में इसका हठीला व्यक्तित्व कितना भयंकर हो जाता है।

लौटता हूँ अंजुना तट की ओर। तिपहिया स्कूटर लगभग बीस मिनट में पहुँचा देता है। टेढी मेढ़ी, ऊँची नीची सडक पर तीव्र गति से भागते स्कूटर पर बैठे हुए हवा झकझोरती है। आसपास काजू, कटहल और आम के हरे भरे, फूले-फले गाछ गोवा के प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रमाण पत्र बाँट रहे हैं।

अंजुना तट भी सम्मोहन का एक केन्द्र है। पहुँचते ही कई छोटे छोटे रेस्त्रां दीख जाते हैं। फर्नांडीज रेस्त्रां में बैठता हूँ। धूप बहुत तेज हो गयी है, इसलिए छाया अच्छी लग रही है। भारत और विश्व का नक्शा दीवाल पर टँगा है। सैलानियों के लिए घूमने का प्रबंध किया जाता होगा। सामने की मेज के पास एक छोटा विदेशी बच्चा खडा है। बडा सा सीताफल लेकर एक कामकाजी महिला आयी। उसने बच्चे को छेड दिया। बच्चे ने उसके सीताफल को थपथपा दिया। मुँह बिराया। अपनी जुबान में कुछ कहा और चुप हो गया। सभी हँस पडे। महिला और बच्चा दोनों खूब हँसे। हँसने की भाषा देशी विदेशी की सीमा का बंधन नहीं मानती।

बगल वाली मेज पर एक विदेशी रमणी पैन्टी में बैठी है। पायल पहने है।

इसे बडी गर्मी लग रही है। अपने सामने मेज पर बर्फ की एक सिल्ली रखे है। कभी-कभी क्षण-दो क्षण मे सिल्ली पर हथेली रख देती है। रेस्त्रा के किनारे नारियल का ढेर लगा है। विदेशी महिला के पैरो के पास एक झबरा पिल्ला सोया है। सिल्ली की ठडक पहुँच रही है शायद। आसपास दूर तक नारियल के ऊँचे ऊँचे पेड गहरे सागर तट पर खडे होकर आसमान की ऊँचाई नाप रहे हैं। यद्यपि दोपहर होने का है पर चहल-पहल बनी हुई है। स्नान स लौटे हुए मुसाफिर रेस्त्रा म विश्राम कर रहे हैं।

पास पडी पत्थर की शिला पर चिलमे पी जा रही हैं। गाँजा, चरस, स्मैक कुछ भी हो सकता है। उस ग्रुप मे बठे हुए मैलानी फूँक मारने को तत्पर दीख रहे हैं। समीप ही मरियल कुत्तो की पचायत लगी है। सभी हाँफ रहे हैं। हड्डी के एक टुकडे पर समझौता नहीं हो रहा है। कई गिद्ध दृष्टियाँ टोलो से झाँक रही हैं। दूर पहाड पर क्रास दीख रहा है। त्याग की एक नयी ऊर्जा भर जाती है मन मे। अपने स्कूटर ड्राइवर से पूछता हूँ—"भाई, इस नगी सभ्यता के लिए यहाँ के स्थानीय लोग कुछ कहते नही ?" "साहब, एक बार पुलिस मे शिकायत की गयी थी। गाँव की इज्जत का सवाल था। नगे स्नान पर पुलिस ने रोक लगा दी। थोडे दिन बाद धधा फिर शुरू हो गया। एक बार चल पडा तो चल पडा, कौन पूछता है ?" अजुना वागातोर जैसा नही है। कालगुट भी वैसा नही है। पर हाँ, इत्र, कैमरा, ब्लेड, रूमाल और जाने क्या क्या यहाँ बिकता रहता है। कुछ तो विदेशी के नाम पर और बहुत कुछ देशी वस्तुएँ विदेशी के भाव आती-जाती रहती हैं। विदेशी का क्रेज अभी भी अपने देशवासियो मे है। अजुना का सागर-तट वागातोर जैसा नही है। सभी तटों की अलग अलग भगिमाएँ हैं पर वागातोर जैसी नैसर्गिक कृति को विकृति के कीडो से बचाना चाहिए। सभ्यता का लम्बा रास्ता पार करके हम जिस मजिल तक पहुँचे हैं, कही उससे पीछे तो नहीं लौट रहे हैं।

# कबाडी का सोना

लखनऊ के अमीनाबाद मे हजरतगज जैसा माहौल नही है। उसम एक ऐसा पुरानापन है जो खाने पीने के सामान से लेकर कपडे-लत्ते तक के लिए आकर्षित करता है। जसे पुरानी होकर भी अपनी प्रिय वस्तु और प्रिय बन जाती है, वैसे ही यह अमीनाबाद है। यद्यपि इसके चेहरे पर कोई आधुनिक रगीनी नही है पर पुराने चेहरे पर भी लोग फिदा हैं। पान की गिलोरी और देशी घी की मिठाइ। काई याद न दिलाए। स्वग का दरवाजा जैसे बिना सकेत के ही खुल गया हो। अमीनाबाद मे रेवडी वाले नुक्कड पर घुमक्कडो का ताँता लगा रहता है और डिब्बो मे बद बुढिया का बाता तो सभी का पसद है। बारीक लच्छे मुँह म जाते ही गल जाते हैं। घनश्याम रजन से पूछता हूँ तो हजार बातें बतलाते हैं। मस्जिदो की, महलो की, नवाबो की, बेगमो की एक एक विशेषता पर नजर डालते है। उनकी दष्टि कलात्मक है। इसलिए वणन म तमाम चित्र छवियाँ उभरती चलती हैं। फुलझडी लग जाती है। मेरे सामने उस समय दो लखनऊ उतर आते हैं। एक तो मेरे सामन का एक छाटा सा वतमान लखनऊ और दूसरा अतीत की चाँदनी मे चमचमाता लखनऊ। पर दोनो मे तालमेल है। यही तालमेल लखनऊ की विशेषता भी है।

उस दिन अमीनाबाद मे घूमते हुए मैं थक गया था। मुख्य सडक से हट कर एक गली की ओर देखा तो कबाडी की तीन चार दुकानें दिखाई दी। पुरानी किताबो के कबाडी थे। इनका भी राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है। कलकत्ता से चलकर पोथियाँ बबई पहुँच जाती हैं। दिल्ली के कबाडी अपना गट्ठर लखनऊ भेज आते है। नया स नया नगर हो पर कबाडी अपना धधा खाज लेता है। उसके लिए सारा वतमान अतीत बनते ही कबाड बन जाता है। प्रबुद्ध पाठक उसके अतीत को पुन अपना वतमान बनाता है। अतीत बन जाने के बाद वर्तमान जब फिर से वतमान बनता है, उसम वही पहले वाली ताजगी आ जाती है। क्योकि पाठक के सामने तो वह पहली बार ही आता है।

मैं दुकानो की ओर मुड गया।

-मोटी मोटी पोथियां तरतीब से लगायी गयी थी। पाकेट बुक्स का ढेर लगा था। क्राउन और डिमाई साइज की छोटी पुस्तकें देखने वालों ने इधर-उधर कर दी थी। मैं भी किताबों की दुनिया मे तल्लीन हो गया। कभी आपका समय न कटता हो तो कबाड़ी की दुकान पर पुस्तक देखिए। समय ऐसे खिसक आएगा कि आपका पता ही नही चलेगा। जो पुस्तक आप नहीं भी देखना चाहेंगे वह भी देखनी पड़ेगी। जिस पुस्तक को खोज रहे होगे वह उस समय तो नही मिलेगी, बाद मे चाहे मिल ही जाए। यह अनोखी दुनिया है। दिल्ली मे ऐसे मिथ्या मान पालने वाले अनेक पढ़े लिखे लोग मिल जाएँगे जो कबाड़ी के यहाँ से बिना जरूरत की पुस्तकें खरीदकर अपना ड्राइंग रूम सजाते हैं। अध्यताओ मे, थोड़ी देर के लिए ही सही, उनकी गिनती हो ही जाती है।

मैं अपनी रुचि की पुस्तकों को उठाकर रखता था। मन म यही था कि कोई अच्छी पुस्तक हाथ लग जाए तो कबाड़ी की दूकान पर आना सार्थक हो। यहाँ कम समय हो तो आना ही नही चाहिए। दूकानदारों को भी जल्दी नहीं होती। उन्हें पता है कि ऐसी फुटपथिया दूकानों पर वही लोग आएगे जिन्हें पुरानी पुस्तकों म रुचि है। यह ग्लैमर की दुनिया नही है। किताबों के इस महासमुद्र म गोता लगाना आसान नहीं है। पर क्या किया जाए? प्रयास तो करना ही पड़ता है।

किसी पुस्तक स कवर गायब है। कोई आधी बची है। किसी के अंतिम पन्ने फट गए हैं। किसी किताब से तस्वीरें नोच ली गयी हैं। कोई पुस्तक एकदम नयी है। किसी लेखक ने अपने महामान्य को भेंटस्वरूप दी थी अपना पुस्तक। पर वह तो यहाँ बिकने के लिए आ गयी है। ऐसे अनेक घर हैं जहाँ पुस्तकें स्त्रियों की दुश्मन हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें हटना पड़ता है स्त्रियों के रास्ते से। बेजान पुस्तकें, जहाँ रख दीजिए, रखी रहेंगी। जुबान है तो जरूर पर खुलती ही नही। अपार सहनशीलता से विरोधी वातावरण को भी वे अपने अनुकूल बना लेती हैं।

क्राउन साइज की एक मोटी पुस्तक मैं बड़े चाव से उठा लेता हूँ। बिना जिल्द की पोथी है। शायद पेपरबैक रही हो। उसका भी पता नहीं चल रहा है। अन्दर का सूचना पृष्ठ शेष बचा है। चार सौ अठहत्तर पृष्ठ की इस पुस्तक के सभी पन्ने स्पष्ट हैं। कागज बहुत पुराना हो गया है। मोड़ने पर टूट सकता है। बीच-बीच म कई चित्र हैं। आर्ट पेपर पर काली स्याही से ही छापे गए हैं। पुस्तक का नाम चित्रों पर भी छपा है। महात्मा हंसराज, मोतीलाल नेहरू, सरोजिनी नायडू, मदन मोहन मालवीय, महात्मा गांधी और सर तेज बहादुर सप्रू के चित्र अभी अच्छी दशा मे हैं। पुस्तक के लेखक का चित्र भी आरंभ मे दिया गया है। प्रतीत होता है कि जौहरी की दृष्टि इन चित्रों पर नहीं पड़ी।

कबाडी से दाम पूछता हूँ।

पचास रुपये।

बाबूजी, यह किताब नही सोना है। आपको ऐसी किताब कही नही मिलगी। दिल्ली मे एक लेखक की बीवी न अपने पति की सारी किताबें बेच दी थी। तभी मुझे भी मिल गयी। साहब, आप ही लोगा से लाता हूँ। मेरे घर किताबो की खेती ता होती नहा। बस बाबूजी, आप लोगा की दुआ स कीमत पहचानता हूँ।

हाँ, तभी तो आपने कीमत वाला कोना फाड रखा है।

बाबूजी, लेना हो तो गाँठ से पैसे निकालिए। आप नही लेंगे तो क्या किताब बिकेगी नही।

नही भाई, मैं यह तो नही कहता कि पुस्तक बिकेगी नहीं पर जितना दाम आप माँग रहे हैं, ज्यादा ही नही, बहुत ज्यादा है।

कबाडी अपनी चीज को सोना सिद्ध करता गया। मैं उसकी बातो को सुनता तो गया पर स देह भी बना रहा कि कहीं ऐसा न हो कि यह किताब मुझे मिले ही नही। पास मे इतने पैसे भी नही थे। बातचीत का कुछ ऐसा दौर चला कि डेढ रुपये मे सौदा पट गया। कबाडी का सोना मैंने डेढ रुपये म खरीद लिया। उसने बडी लापरवाही से किताब मेरे हाथ मे थमा दी। डेढ रुपया अपने गल्ले मे ऐसे फेंक दिया जसे कुछ मिला हो न हो। ये लोग पुरानी किताबो को इतने कम दाम मे खरीद लेते हैं कि नुकसान की गुजाइश ही नही रहती। अपना सोना देकर कबाडी दुखी नहीं था पर मैं उसे पाकर आह्लादित था।

उस पुस्तक मे अपने समाज का अतीत था। ऐसा अतीत जो वतमान से बहुत दूर नही था। इतिहास म आसू भी होते हैं और प्रसन्नता भी कम नही होती। समाज एक बार जो रास्ता चल लेता है उसे दुबारा देखना अतिशय रोमाचकारी होता है। इस रोमाच मे जो सुख है उसकी तुलना के लिए दूसरा सुख खोजना कठिन काम है।

अपने वतमान के दपण मे अतीत देखना आह्लादकारी है। कभी-कभी तो अतीत देखते हुए हम वतमान को भूल जाते हैं। असलियत यह है कि वतमान के सूखे मे अतीत की बरसातें बडी भली लगती हैं।

जिस पुस्तक को मैं कबाडी का सोना कह रहा था, उसका नाम तो बतलाया ही नही। वह पुस्तक थी 'दुखी भारत'। लेखक लाला लाजपत राय। नाम आकर्षित करता है। भारत दुखी है, फिर भी नाम मे आकपण है। मेरे मन म अतीत के दुख को आज के सदभ मे देखने की चाह है। दुख तो आज भी कम कम नही है। सुख बस इतना ही है कि हम आजाद हैं। पहले का दुख सात समदर पार के लोग देते थे आज का दुख अपने ही लोग देते हैं। कौन दुख कितना दुखदायी है, कुर्सियो से पूछता हू तो बोलती ही नही। पत्थर की बनी इमारतें

कहती हैं—"हम न किसी को दुख देने को कहते हैं और न सुख देने को कहते हैं। लोग मनमानी करते हैं।"

'दुखी भारत' को उसके लेखक ने अमेरिकावासियो के नाम समर्पित करते हुए लिखा है, "यह पुस्तक अमेरिका के उन अगणित नर-नारियो को प्रेम और कृतज्ञतापूर्वक समर्पित है जो ससार की स्वाधीनता के पक्षपाती हैं, काले-गोरे और जाति या धर्म का भेद नही मानते और जिन्होंने प्रेम, मनुष्यता और न्याय को ही अपना धम माना है। ससार की दलित जातियाँ अपनी स्वतत्रता के युद्ध मे उनकी सहानुभूति चाहती हैं, क्योकि उन्ही मे विश्व की शांति की आशा केन्द्रीभूत है।"

'दुखी भारत' की रचना का एक इतिहास है।

अमेरिका की एक महिला मिस कैथरिन मेयो भारत आयी थी। उन्होने 'मदर इडिया' नामक एक किताब अग्रेजी मे लिखी थी जिसमें उन्होने भारत को बहुत भला-बुरा कहा था। तर्क दिया था मिस मयो ने कि "मैं इस बात का विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि मैं न तो दूसरो के मामलो मे व्यथ पडने वाली महिला हूँ और न राजनीतिक दलाल हूँ। मैं केवल अमरीका की एक साधारण प्रजा हूँ जिसका काम सच्ची बातो को खोजकर अपने भाई-बहनो के सम्मुख उपस्थित करना है।"

'दुखी भारत' 'मदर इडिया' के उत्तर मे लिखी गयी पुस्तक है। इसके लेखक ने अपने समाज की ओर देखकर यथाथ स्थिति का खाका खीचा है। उसने यह भी सिद्ध किया है कि 'मदर इडिया' की लेखिका ने दुर्भावना से प्रेरित होकर यह पुस्तक लिखी है।

अपनी यात्रा की लौटानी दिल्ली पहुँचने के पहले ही पूरी पुस्तक मैंने पढ डाली थी। निश्चय ही मिस मेयो के मन मे दुर्भावना थी। प्रेरणा उन्हे चाहे जहा से मिली हो पर भारत के प्रति उनके मन मे गलत धारणाएँ थी। कई अग्रेजो ने हिन्दुस्तान की सस्कृति, साहित्य और सभ्यता का मजाक समय समय पर उडाया था। अनेक अग्रेज ऐसे भी रहे हैं जिन्होंने हिन्दुस्तान की प्रशसा मे बहुमूल्य पुस्तकें लिखी हैं।

मिस मेयो मूलत अमेरिका निवासी पत्रकार थी। उनके लेखन मे सवत्र छिछली पत्रकारिता का दबाव दीखता है। उन्हें ब्रिटेन के साम्राज्यवादी कठमुल्लो ने समझा बुझाकर भारत भेजा था। 'मदर इडिया' पुस्तक जान बूझकर लिखवायी गयी थी। इस पुस्तक मे भारत का पिछडापन सिद्ध करने का उद्देश्य यह था कि अभी इस देश को आजादी देना ठीक नही है। अपने पैरो पर खडा होने के लिए इसे अभी और प्रतीक्षा करनी है। मिस मेयो ने यहाँ आकर कुछ लोगो से बातचीत की। उस बातचीत को ओछी पत्रकारिता की भाषा में तोडा-

मरोड़ा। और इस प्रकार 'मदर इंडिया' की रचना हो गयी। लाला लाजपत राय ने लिखा है कि मिस मेयो की भाषा मे आकर्षण है। उनकी शैली पाठक को अपनी ओर खीचती है पर उनके विचारों मे एकांगीपन है। वह इस देश को पिछड़ा और असभ्य समझती है। कहीं कहीं तो वह अपनी बातो का ही विरोध करती लगती हैं।

मिस मेयो के विचारों की बानगी के लिए कुछ म-दम यहाँ द रहा हू। इनमें पता चलता है कि 'मदर इंडिया' की लेखिका के मन मे कितना विद्वेष और घृणा भरी थी, भारत के सम्बन्ध म।

मिस मेयो ने अपनी पुस्तक म किसी दावत का हवाला दिया है। वह चाहती थी कि दावत म एकत्र लोगो स सुराजी लोगो क विचार जान सकें। गलत व्यक्तियो का जिक्र करते हुए देसी राजाओ की बातो का तोड मरोड कर उसने व्यक्त किया है। इतना ही नहीं, महात्मा गाधी और रवी द्रनाथ टगोर के सबध म बहुत ही घृणास्पद बातें मिस मेयो ने लिखी हैं। एक बार जेल मे महात्मा गाधी के फोडे का आपरेशन हुआ था। मेयो की दृष्टि म गाधी आयुर्वेद इलाज का पसद करते थे क्योकि वह भारतीय थे। उन्होंने लिखा है—'मि० गाधी का विचार कुछ और ही प्रकार का मालूम हुआ। डाक्टर ने फिर कहा, 'मैं इस फोडे को चीरना पसद न करूँगा, क्योकि यदि इसका विपरीत परिणाम हुआ तो आपके सब मित्र लोगो को जिनका कि कर्त्तव्य आपकी सभाल करना है, द्वेष की भावना से काम करने का अपराधी ठहरावेंगे"। मि० गाधी न आग्रह किया कि वे अपने मित्रो से कहेंगे कि मेरे निवेदन पर ऐसा हो रहा है। इस प्रकार स्वेच्छापूवक मि० गाधी पाप वढाने वाली सख्या मे गए। और 'सब से बुरो' में से एक ने—भारतीय मेडिकल सर्विस के एक अफसर ने उनका फोडा चीरा और जब तक अच्छे नहीं हो गए एक अग्रेज बहिन न बडी सावधानी से उनकी सेवा की।"

इस तथ्य से सभी परिचित हैं कि कर्नल मडक और सजन जनरल हूटन न गाधी जी के फोडे का आपरेशन किया था। मिस मेयो तो यही सोचकर भारत आयी थी कि इस देश का दुष्प्रचार अग्रेजी के माध्यम से किया जाए। विक्टोरिया स्कूल लाहौर की मुख्य अध्यापिका मिस बोस से उन्होने लम्बी बातचीत की। मनगढत बातो का नमूना देखिए—"पुरुष पडितो को पर्दे की आड स पढाना पडता है। भारत की अधिकाश स्त्रियाँ सीना पिरोना जानती ही नही। भारतीय लड़कियाँ बडी होने पर अपने हाथ से कदापि भोजन नही पकाती और यह काम बिल्कुल गदे नौकरो पर छोड देती हैं।

इसी प्रकार रवी द्रनाथ के एक लेख के आधार पर उन्हें भी मेयो ने अपना निशाना बनाया है। उन्हें भारत की सामाजिक कुरीतियो की बडी चिन्ता है। वे एक एक बात को अपनी शैली मे रेखाकित करती हैं। यह रेखांकन उनके अपने

अभिमान के लिए बड़े काम का है।

लाजपत राय जी ने 'दुखी भारत' में कहा है, "कहीं-कहीं तो इन आक्षेपों में सत्य का केवल उतना ही सम्मिश्रण है जो सर्वथा असत्य से भी ज्यादा हानिकारक हो सकता है। कोई भारतीय, वर्तमान सामाजिक कुरीतियों का उसे कितना ही तीव्र ज्ञान क्यों न हो, और उसके हृदय में मूल से सुधार करने की कितनी ही महान लगन क्या न हो किसी दशा में भी मिस मेयो द्वारा अंकित किए गए चित्र को अत्यन्त खींचतान और असत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं स्वीकार कर सकता।"

मिस मेयो ने भारतीयों में शिथिलता, असमर्थता, स्वयं कुछ न सोचने की कमी, मौलिकता, स्थिर शक्ति और स्थायी राजभक्ति का अभाव देखा है। उनके अनुसार ये सारी कमियाँ आज ही नहीं बल्कि बहुत पहले से चली आ रही हैं। इतिहास की आँखों में लेखिका ने बड़ी चतुराई से झाँका है। वह कहती है कि भारतीय लोग दासता की जंजीरों को चिपकाए हुए हैं। जो उन्हें तोड़ने का प्रयत्न करे उसे मारने दौड़ते हैं। उन्हें कोई स्वतंत्र नहीं कर सकता।" लाला लाजपत राय और गांधी जी मानते हैं कि कुपोषण एवं निरक्षरता आदि के लिए तत्कालीन राजतंत्र ज्यादा जिम्मेदार है।

एफ० ई० की० एक ईसाई मिशनरी थे। उनकी कई पुस्तकें भारत और उसकी शिक्षा एवं साहित्य के संबंध में प्रकाशित हुई थीं। 'एशियण्ट इंडियन एजूकेशन' और 'हिस्ट्री ऑव हिंदी लिटरेचर' बहुत प्रसिद्ध हैं। लाला जी ने 'एशियण्ट इंडियन एजूकेशन' की विशेषताओं को बतलाते हुए उन्हीं से मिस मेयो के तर्कों को काटा है। ब्राह्मण गुरुओं और मुसलमान मौलवियों की निष्काम और निःशुल्क शिक्षा-पद्धति की तारीफ की है।

आत्मसम्मान, सादा जीवन, संयम, श्रद्धा आदि से भारतीय शिष्य मंडित रहते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए अलग-अलग शिक्षा विधान था। कला, कारीगरी और दस्तकारी में शूद्रों का बोलबाला था। उस क्षेत्र में वे अग्रणी थे। अंग्रेजी राज में भारतीय समाज की प्रगति की बात तो मेयो उठाती हैं पर दुर्गति की ओर संकेत नहीं करती हैं। लाला जी ने अपनी पोथी में अंग्रेज विचारकों और लेखकों की रचनाओं के उद्धरणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि मेयो की अधिकांश बातें कपोल कल्पित हैं। इसीलिए दृढ़तापूर्वक यह कहा जा सकता है कि 'मदर इंडिया' की रचना के पीछे मंतव्य कुछ दूसरा ही था। दूसरों की बुराई करना बहुत आसान है। अंतर्दर्शन कठिन काम है। जिसने अंतर्दर्शन के द्वारा अपना कोना कोना देख लिया है, वह कभी भी दूसरों की बुराई कर ही नहीं सकता। आत्मालोचन एक ऐसा दर्पण है जिसमें अपनी प्रतिच्छाया बहुत स्पष्ट दीखती है यदि कोई देखना चाहे।

लाला लाजपत राय ने अमरीका के हबशियो की दशा उनके समीप जाकर देखी थी। जिस मिस मेयो ने भारत की 'निदयता' को उछाला है उन्हें यह बात कसे भूल गयी कि अमरीका मे हबशियो की दशा इतनी खराब है कि दुनिया मे उसका अन्य कोई उदाहरण नही है। यह कोई नयी बात नही है। अपने अपने पक्ष को सभी मजबूत करते हैं, पर एक पक्ष होता है न्याय और सत्य का। इन दोनो की पक्षधरता तो सभी को करनी चाहिए। पत्रकारिता का स्तर जब गिरता है, सवाददाता को न तो सत्य का भान होता है और न न्याय का। उसे तो अपना चटपटा मसाला जुटाने से मतलब। वह किसी के लाभ और हानि की परवाह भी नही करता। ऐसे सवाददाता के सामने जन रुचि के परिष्कार की समस्या नही रहती। वह तो इतना देखता है कि पाठक उसकी खबर को चटखारे के साथ पढ रहे हैं कि नही। मिस मेयो ने ऐसा ही काम किया है। 'दुखी भारत' किताब तो कबाडी के अनुसार उसका सोना है, यह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ। ठीक ही तो कहता है वह। इस पुस्तक से उस समय भी पाठको की आँखें खुली थी और आज भी खुलती है। जब तक यह पोथी रहेगी, हिन्दुस्तान की उस असलियत को बतलाती रहेगी जिसे लोग तोड मरोड कर प्रस्तुत करते रहे है।

भारत की स्त्रियो के बारे मे मिस मेयो को बडी चिन्ता है। पिछडापन, अज्ञान, अशिक्षा, हठधर्मिता, अदया और ऐसी ही अनेक कमियाँ हैं जो मिस मेयो बार बार गिनाती हैं। प्रकाश और अधकार के बीच वे अधकार का ही चुनाव करती हैं। भारत के प्राचीन ग्रथो मे हमारे चिन्तको ने स्त्रियो को जो स्थान दिया है वह चाँद पर पहुँचने वाले विज्ञान विहारी आज भी नही दे पाए। स्त्री का हमारे समाज मे क्या स्थान था? इस बात के लिए विष्णु पुराण की शब्दावली पर ध्यान देना आवश्यक है। पुरुष विष्णु है, स्त्री लक्ष्मी। पुरुष विचार है, स्त्री भाषा। पुरुष धम है, स्त्री बुद्धि। पुरुष रचयिता है स्त्री रचना। पुरुष धय है, स्त्री शाति। पुरुष हठ है, स्त्री इच्छा। पुरुष मत्र है स्त्री उच्चारण। पुरुष अग्नि है, स्त्री ईंधन। पुरुष सूय है, स्त्री आभा। पुरुष विस्तार है, स्त्री सीमा। पुरुष आँधी है, स्त्री गति। पुरुष समुद्र है, स्त्री किनारा। पुरुष धनी है, स्त्री धन। पुरुष युद्ध है, स्त्री शक्ति। पुरुष दीपक है, स्त्री प्रकाश। पुरुष दिन है, स्त्री रात। पुरुष वृक्ष है, स्त्री फल। पुरुष सगीत है, स्त्री स्वर। पुरुष न्याय है, स्त्री सत्य। पुरुष सागर है, स्त्री नदी। पुरुष स्तभ है, स्त्री पताका। पुरुष शक्ति है स्त्री सौन्दय। पुरुष आत्मा है स्त्री शरीर।

लाला लाजपत राय ने बडी शिष्ट भाषा मे मिस मेयो के तर्कों को काटा है। हमे उन तर्कों को कुतर्क कहना चाहिए। सिद्धांत रूप मे भारत म स्त्री और पुरुष दोनो एक रथ के दो पहिए हैं। हाँ, समय के साथ-साथ उत्थान और पतन तो आते जाते रहते हैं। पूरी पृथ्वी पर सभी जगह हरीतिमा और निमल जल नही

हैं। कहीं-कहीं कीचड़ वाले पोखर भी हैं। दृढ़ चट्टानों वाले पहाड़ भी हैं। स्थिर जल वाले जलाशय हैं तो पर्वत तोड़कर बहने वाली नदियां भी हैं।

'ग्रैंड ट्रंक रोड' नामक अध्याय में मेयो ने भारत की सड़कों का मजाक उड़ाया है। बैलों के चलने से उनके खुरों से धूल और कीचड़ सने रास्ते ही सड़क का नाम पाते थे। पुलों की संख्या भी मेयो के अनुसार बहुत ही कम थी। 'दुखी भारत' में लाला जी ने लिखा है—"यदि उसे इस बात का किंचित्मात्र भी ज्ञान होता कि ग्राण्ड ट्रंक रोड क्या है तो वह इतना अवश्य जानती कि इस सड़क को न तो बैलों ने बनाया था और न उसके अंग्रेज बहादुरों ने। सच बात तो यह है कि अंग्रेजों के आने से पूर्व भारतवर्ष की कुछ सड़कें ऐसी थी जिनकी मीलों की लम्बाई चार अंकों में गिनी जाती थी और रेल पथ बनने से पूर्व उनके एक सिरे से दूसरे पर पहुंचने के लिए यात्रियों को उन पर महीनों चलना पड़ता था।" मिस मेयो की पुस्तक के अध्यायों के शीर्षकों की भाषा बड़ी चटपटी है। 'दरिद्रता का घर' एवं 'मुक्ति की फौज का पाप' जैसे शीर्षक पाठकों को चौंकाते ही हैं।

राजनीति में भेद, रहस्य, असत्य आदि का स्थान प्रधानता पाता है। सिंहासन पर विराजमान व्यक्ति यदि कोई गलती भी करता है तो उसके दरबारी हमेशा ठकुरसुहाती कहना पसंद करते हैं। राजनीति के आंगन में सुधी समीक्षक के लिए कोई स्थान नहीं होता। जिस दिन ऐसा संभव हो सकेगा, जनता के दुख दारिद्र्य मिट जाएंगे।

जो राजनेता अपने असत्य की टिकिया से सत्य का चूर्ण तैयार करके जनता में बांटता है, वह तात्कालिकता में भले ही सफल हो जाए पर उसकी आयु निरंतर क्षीण होती चली जाती है। झूठ का जहाज पानी पर ज्यादा देर तक नहीं तैर सकेगा। सत्य का पानी उसे गला कर समाप्त कर देगा। अंग्रेजों के साथ भारत में यही हुआ। अनेक विवेकशील अंग्रेज ऐसे भी थे जिन्होंने अपने शासन के वर्तमान को पहचान लिया था। इसीलिए उन्हें भविष्य का मानचित्र झलक रहा था। पर जो सत्ता मद में झूम रहे थे वे अपने आगामी विनाश को नहीं पहचान सके। यदि दजना मिस मेयो भारत के बारे में झूठ की इमारत तैयार करती तो यथार्थ तो एक न एक दिन सामने आना ही था। आज लाला लाजपत राय नहीं हैं। मिस मेयो भी नहीं हैं। भारत अपनी जगह है। कदाचित मेयो को पता नहीं था कि राष्ट्र कभी मरता नहीं है। वह पत्रकार जो थी, वह भी अमेरिका की।

'मदर इंडिया' में जो विचार व्यक्त किए गए थे उन पर तमाम बुद्धिजीवियों की प्रतिक्रियाएं आयी थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, ईसाई धर्म प्रचारक ए० एच० क्लार्क, प्रिवी कौंसिल की न्यायकारिणी के सदस्य लार्ड सिनहा, आयरलैण्ड के कवि और लेखक डाक्टर जेम्स एच० कजिन्स, विख्यात नाटककार और उपन्यास लेखक एडवर्ड टॉमसन, सी० पी० रामस्वामी ऐयर जैसे अनेक नाम

हैं जिन्होने मिस मेयो के लेखन की निंदा की थी। यह बात न्यायोचित है कि बाहर का दृश्य देखने के लिए हम अपने मकान की खिडकी खुली रखनी चाहिए, पर यदि हम सदव उस खिडकी से कीचड ही देखते रहे तो इसमे वनस्पतिया और उनके फूल पत्तो का क्या दोष ?

यह 'दुखी भारत' पुस्तक पता नही कहाँ-कहाँ की यात्रा करके मेरे पास आयी है। इसके माध्यम से मुझे अपने अतीत मे झाँकने का अवसर मिला है। आज की मूल्यहीनता ने हम निराशावादी बना दिया है। हमारे यहाँ एक वग ऐसा भी है जो असत्य में भी एक प्रकार का सत्य खोजता है। चारो ओर गिरावट है। सशय है। अनिश्चितता है। भय है। सकल्प अनुपस्थित है। क्या लेकर हम सघप करें। आज की समस्या है, हम कहाँ जाएँ और किधर जाएँ।

अमीनाबाद के कबाडी ने 'दुखी भारत' को अपना सोना कहा था। उसने अपनी कीमती चीज मुझे देकर बडी कृपा की है। निश्चय ही उसका साना बिक्री के लिए था। मैंने तो उसे जतन से रख लिया है। मैं उसका मूल्याकन नही कर सकता। वह सोना अमूल्य है मेरे लिए।

# ठहरिए, यह जेजे कॉलोनी है

हरियाणा की साहिबी नदी मे बाढ़ आयी तो पश्चिमी दिल्ली का बडा हिस्सा पानी मे डूब गया। पखा रोड के पास वाले गदे नाले मे नदी का पानी लौट आया। पानी क्या, जान की आफत थी। जीवन के साथ-साथ पानी मौत भी है। कुछ लोगो ने यह बात पहली बार जानी। नाले मे नदी का पानी फिरते ही कीचड, मल, खर-पतवार, सडा कपडा-कागज सभी कुछ ऊपर उतरा आया। बहाव बद था इसलिए जहाँ कही नीची सतह मिली वही फल गया। पानी के रेले को रोकना आसान बात नही थी।

इसी गन्दे नाले के किनारे किनारे जेजे कॉलोनी बसी है। यहाँ पहले छोटे छोटे प्लाट काटे गए थे। एक परिवार के लिए पच्चीस गज बहुत था। परिवार बढ़ेगा तो देखा जाएगा। और बढेगा ही क्यो ? यहाँ रहने वाले निवासी मध्यवर्ग का स्वप्न देखने वाले हैं। निम्न स्तरीय जीवन जीने वाले बेचन सिह, कैलाश, हिम्मत बहादुर, तारीफ सिह जोखू आदि अपनी अपनी बीवियो और बच्चो के साथ समय काट रहे हैं।

मगलवार को सुपर बाजार की गाडी आती है। सारी चीजें महँगी हैं। माचिस की बिक्री सब से ज्यादा होती है। यही कुछ फल ठेलिए पर लादे फलवाले खडे होते हैं। सडे गले फलो की खपत यही होती है। यहाँ का सब्जी बाजार बेसहारा लोगो को राहत देता है। सडी भिण्डी, काने बगन, पिचकी हुई मटर की फलियाँ खरीदने के लिए वे लोग आते हैं जो दिन भर मे मुश्किल से रुपये दो रुपये की आमदनी कर पाते हैं। सामान्य होटल वाले आते हैं। सडी हुई सब्जियाँ इकट्ठे खरीद कर दुकानदार को उपकृत कर देते हैं। यही हाल फलो का है। पूरे महानगर मे जो फल कही नही बिकते, जो फल जानवरो के खाने लायक भी नही होते उनकी पूछ यहाँ ललक के साथ होती है। नन्हे मुन्नो की इच्छाओ के सहारे बिक्री का माहौल रोज बनता रहता है। यह पापी मन मानता नही है। अच्छी वस्तुओ के मोह मे इधर उधर भटकता रहता है। यह मोह बढ़ते बढ़ते पहाड बन जाता है। जब व्यक्ति की चाही हुई बातें नही पूरी

हो पाती, यह टूटता है। टूटी हुई स्थिति मे उसका जीना दूभर हो जाता है। उम्मीद का एक तिनका पकडे हुए वह इस जनसागर को पार करता रहता है।

यदि गदी चीजें खाकर जेजे कॉलोनी का व्यक्ति बीमार पडता है तो डरने की कोई बात नही है। पास मे अस्पताल है। कामकाजी महिलाओं के लिए सेण्टर खुला है। सिलाई, कढाई की नाव पर बैठ कर वे जीवन की नदी पार कर सकती हैं। बुझे हुए चेहरे, निराशा की पलकें, सूखे ओठो की कथा बाँचनी हो तो जेजे कॉलोनी के सामुदायिक सेण्टर जाना चाहिए। य बहनें, बीवियाँ, माताएँ उनकी हैं जो गली गली मे घूमकर गुब्बारे बेचते हैं, मिट्टी के कुल्हड पर कागज मढकर डुगडुगी बनाते हैं, एक किलो चना खरीदकर पचास पचास ग्राम बेचकर दस बीस पैसे का लाभ कमाते हैं। लटके हुए चेहरे के साथ तिराहे पर मूगफली बेचने वाला शाम को घर पहुँचता है तो बच्चो की छोटी-मोटी फौज उसे घेर लेती है। पर वह करे क्या ? मूगफली से रोज रोज तो मन नही बहलाया जा सकता। बच्चो का मन जुगनू की तरह इधर उधर फुदकता रहता है, चाहे कोई ध्यान दे अथवा न दे।

पास वाला गदा नाला कीचड और पानी लेकर बहता है। गन्दगी मे लथपथ सुअर नाले मे लोटते रहते हैं। बिना रोक-टोक जेजे कॉलोनी के निवासी कूडा कचरा नाले को खिलाते हैं। वह जूता बनाने वाला कारीगर नाले के किनारे बैठकर अपना कमाल दिखाता है। दाम बडी दुकानो जैसा लेता है भले ही दो महीने बाद उसकी चमकला मेहनतकश की चाल झेलकर मुह फैला दे। सरकार ने सडकें बनवाई हैं। नालियाँ भी ठीक की गयी हैं। गलियो मे फ्लैट नम्बर के पत्थर स्टड गाडे हैं। रेडियो, टी० वी०, कम्युनिटी हाल, स्कूल सभी कुछ किया दिया है।

इच्छाओ का कोई ओर छोर नही होता। चालाक परिवारो ने अपनी चालाकी के जाल मे सरकार को भी फँसाया है। राशन कार्ड पर फर्जी नाम लिखाना तो आम बात है। झूठ बोल कर कुछ साधन सम्पन्न लोग भी यहाँ आ गए हैं। इनके रास्ते थोडा अलग हैं। ये अपने पडोसी की पूजा मे विश्वास नही करते। अपने स्तर का घमण्ड इन्हे निश्चिन्त नही होने देता।

ईर्ष्या एक अ तमुखी भाव है। यह मनुष्य को बहिर्मुखी नही बनने देता। प्राय ईर्ष्यालु व्यक्ति चुप ही रहता है पर अन्दर ही अन्दर वह एक ज्वालामुखी का जनक होता है। मौका पाकर कभी कभी लावा बाहर भी निकल आता है।

पूरी कॉलोनी मे सात डाक्टर हैं। प्रामाणिक योग्यता किसी के पास नही है। सभी यहाँ पैसा कमाने आए हैं। सेवा की बात तो इस देश मे गाधी के साथ चली गयी। इनके यहाँ भीड लगी रहती है। अस्पताल मे काम चलाऊ दवा मिलती है। कोई दमे से खाँस रहा है। किसी की साँस फूल रही है। किसी का

सिर फटा जा रहा है। किसी को अधकपारी पकड़े है। कोई कोढ़ के दाग पर खीज रहा है। किसी को भूख की बीमारी है। मुहल्ले की बहुओं और बेटियों को खून की कमी है। अधेड़ और जर्जर नारियाँ तो हड्डियों से काम चला लेती हैं। हड्डियों को कहीं बीमारी पकड़ती है !

देवी-देवताओं की कृपा भी जेजे कॉलोनी पर होती है। माता (चेचक) निकलती है तो निकलती जाती है। देवी की फौज गर्मी के दिनों में यहीं से होकर निकलती है। जो बच्चा लश्कर के आगे पड़ गया, उसकी शामत आ गयी। कभी-कभी शंकर के गण भैरव आदि सेना की अगुआई करते हैं तब तो कॉलोनी के भभूतवादी लोग दुबक जाते हैं। कुछ औरतें हैं यहाँ जिनके गदे बालों की जटिलता में देवी का निवास रहता है। जटा फटकारते ही देवी अपने सारे सौंदर्य के साथ बाहर आ जाती हैं।

थोड़ी दूर पर हवेली है। मदिरालय की चहल पहल औरतों और बच्चों को भी झेलनी पड़ती है। स्कूटर चालक, मैन पुलर, ट्रक ड्राइवर, मजदूर, कारीगर जैसी सभाएँ वहाँ आती हैं। प्यास बुझाने की बोतलें लेकर रफूचक्कर हो जाती हैं। नये पुराने शौकीनों का क्या कहना ! पूरी बोतल अकेले ही चढ़ा गए। गालियाँ बकते हुए इधर उधर घूमते हैं। हीरो बनने का जो मजा है वह सामान्य स्थिति में नहीं मिलता। मनुष्य का मन मानता नहीं है। वह हीरो बनना ही चाहता है। उस वक्त उसे हीरो बनने का खोखलापन याद नहीं आता।

दुकानें छोटी छोटी पर दुकानदार का फैलाव कितना बढ़ गया है। तीन दुकानें गोश्त की हैं। बकरे के पीछे वाले पैरों को ऊपर करके टाँग दिया गया है। मांस के लोथड़े काट काट कर बेचे जाते रहते हैं। टाँगों पर टँगा हुआ चौपाये का शरीर अपनी बोटियों से मांसाहारियों को तृप्त करता रहता है। अंडे सभी जगह मौजूद हैं। मछली बदबू के कारण कॉलोनी से बाहर किनारे रखी गयी है। ताजा और बासी मछलियाँ, अभी अभी पानी से बाहर की हुई तड़पती मछलियाँ मनुष्य को सुखी कर जाती हैं।

शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय की ओर से कभी कभी सिनेमा दिखाया जाता है। बच्चों और किशोरों का वह जमघट उमड़ता है कि बैठने की जगह नहीं मिलती। कॉलोनी के सामुदायिक केन्द्र में भी बड़ा हाल कोई है ही नहीं। सामने छोटा सा लॉन जिसके एक तिहाई हिस्से में बदबू बिखेरती गन्दगी है। बैठा नहीं जाता वहाँ। इस गन्दगी के कारण कॉलोनी के निवासी ही हैं। सिनेमा तो खड़े खड़े देखा जा सकता है। कहते हैं बिहार में पहले पहल कसबे में सिनेमा आया तो दर्शकगण बैठने के लिए अपनी अपनी टाट पट्टी लेकर गए। गाँव में पहली बार कार गयी तो लोगों ने उसके आगे चारा भूसा डाल दिया। धर्मात्मा लोग जानवरों की भी भूख प्यास का कितना ध्यान रखते हैं।

पचीस-पचीस गज के यहाँ के मकान श्रमिकों के मात्र आराम के लिए नहीं हैं। यहा ट्राजिस्टर और रेडियो बनता है, टी० वी० रिपेयर किया जाता है। टेप-रिकाडर का दिल पहचाना जाता है। यहाँ की बनी गुडिया बड़े घरा के शोकेस की शोभा बढाती है। बेसन की नलकी मे बच्चों की दुनिया मे नया रग भर जाता है। जिन्दगी की नदी बहती जाती है। पानी, कीचड, गन्दगी, कपड़े लत्ते, फूस पत्तो और घृणा का घोल लेकर बहती रहती है यह जिन्दगी।

चूरन बेचता आदमी घूम रहा है। उसकी पुडिया पेटदर्द मे जादू का असर करती है। कब्ज हो, मरोड हो, ऐंठन हो, पीडा हो, चूरन फाँकते ही छूमन्तर। दिन भर पाँच सात रुपये की कमाई कर लेता है। जेजे कॉलोनी की बदौलत उसे और कही दौडना नहीं पडता। आला दर्जे का चूरन बनाता है। जिस समय पुडिया पर रखे हुए चूरन मे आग की लपट छुआता है लपट से लौ बाहर आ जाती है। बस बच्चो की लार टपक पडती है। उसके लिए यह चूरन वाला भगवान का भेजा हुआ देवदूत है।

बढई तो कई हैं पर जो काम मजूर करता है वह दूसरो से बन नही पाता है। उसका हाथ सफाई म चलता है। चारपाई, सोफा, दीवान, मेज कुर्सी जसी चीजें बनाकर उसने खूब शोहरत कमायी। सामान स्टण्डड हो तो मान भी अच्छा बनता है। मजूर का पैसा उधार में चला गया। प्रेम की कची स सभी कटते गए। एक रोज मजूर के माथे की सिलवटें और गहरा गयीं। कालोनी मे ही उधार बाँट कर मजूर ने अच्छा नही किया। इस दोगली दुनिया का क्या टिकाना। आज विश्वास दिला कर कल मुकर जाती है। अब मजूर सब गँवा कर गली गली मे चारपाई बुनता फिरता है।

कबाडी वालों के यहाँ पूरा झमेला है।

हिन्दी अग्रेजी के अखबार, अच्छी अच्छी मैगजीनें नगे चित्रो वाली पत्रिकाएँ तरह तरह की बोतलें, लोहा लगड, बच्चो की कापियाँ, सिगरेट की पन्नियाँ सभी एक ही जगह मौजूद हैं। जो दुनिया के लोग नापसद करते हैं वही यह कबाडी पसद करता है। लिफाफे लिफाफे, और लिफाफे किया भी क्या जाए।

सूरज निकलता है तो उसकी कचनी किरणो का नाला पार करना पडता है। चाँद झलमलाता है तो गदे नाले मे सुअर के छौने जल विहार करते हैं। यहाँ लक्ष्यहीन कोई नही है। एक जजर बुढिया ने कही से जुगाड करके पचास बोतलें इकट्ठी की। नकली शराब से उन्हे अच्छी तरह भरा। सीलबद किया। इतना ही नही जेजे कॉलोनी के लोगों ने बडे चाव से खरीदा। बाजार से एक रुपए मँहगी। क्या हुआ। लाइन तो नही लगानी पडती। शराब के लिए एक रुपया ज्यादा देने मे कोई बात नही।

रेडियो पर सवेरे एक खबर आयी।

जेजे कॉलोनी के सौ व्यक्ति नकली शराब पीने से मर गए। पचास की हालत चिन्ताजनक है। बुढ़िया गिरफ्तार हुई पर उसने जादू के जोर से अपने को छुड़ा लिया। पीने वाले तो स्वर्ग सिधार गए, जो बचे उन्हें जिन्दगी भर के लिए सबक मिल गया। यहाँ चरस और गाँजा भी छिपाकर बेचा जाता है। छोटी छोटी पुड़ियों का व्यापार जाने कितनों की रोटी का जुगाड़ करता है। जब कभी पकड़ धकड़ होती है, सारी शेखी निकल जाती है।

शिक्षा और अनेक प्रचार के बावजूद बच्चों की फौज उमड़ आयी है। बिल-बिलाते रहते हैं ये बच्चे। शिक्षालय पास में है पर वहाँ जाना इनकी आदत नहीं है। बाप रोटी की चिन्ता मे सवेरे ही घर से बाहर हो गया है। माँ का कहना कौन मानता है। बहत्तर धन्धे हैं। कुतिया के पिल्ले हैं। पतगबाजी है। नेवले साँप की लड़ाई है। *तमाशे वाला दिल्ली का कुतुबमीनार लाया है। डुगडुगी* वाला आया है। बाँस के लट्ठे मे मिठाई लपेटे आया है हुक्के वाला। मिठाई खींचकर सायकिल, डमरू, कुर्सी, मेज सभी कुछ बना देता है। बड़ा करतबी है। बच्चे घेरे रहते हैं। डमरू मुहँ में डाला और क्षण भर में गायब। बच्चो को पता है, हर काम पैसे से होता है। होली जलेगी पैसे से, लोहड़ी मनेगी पैसे से, और दीवाली तो पैसे की देवी का त्योहार ही है। दशहरे मे रामलीला देखते मूगफली पुटकने के लिए पैसे चाहिए। बाप की आय नपी-तुली है। कहाँ से आएँगे पैसे। पर बच्चो को इसकी चिन्ता नहीं है। उन्हें तो गुब्बारे का गुच्छा चाहिए। वैसे *तो इनकी फौज जेजे कॉलोनी मे कहीं भी मिल सकती है पर यदि* चेचक का टीका लगाने वाला आ गया तो ये क्षण भर मे रफूचक्कर हो जाएँगे। इनकी माया ये ही जानते हैं। कहीं भी मजमा लगा सकते हैं। बन्दर नचाने वाले के पीछे नाचते-कूदते ये कोसों दूर निकल जाते हैं। अरे, लौट आएँगे। क्या परवाह है। माँ बाप भी इनकी सीमाएँ जानते हैं। कहाँ तक परवाह करें।

एक लेडी डाक्टर है। पैण्ट शर्ट मे रहती हैं। बाहरी रूप रंग पुरुष से मेल खाता है। कॉलोनी के युवकों को जुकाम भी हो जाए तो वहीं ठीक होगा। राम-बाण की भाँति असर करती है उसकी दवा। पता नहीं क्या संजीवनी देती है वह!! पानी का अभाव यहाँ नहीं है। चौबीस घंटे अपनी पूरी रफ्तार से पानी आता है। राष्ट्रीय सम्पत्ति की कौन चिन्ता करे। टोंटी चोर ले गये हैं। निर्बाध गति से पानी बहता है। नालियाँ ढो ढोकर बड़े नाले को खुराक देती रहती हैं।

यहाँ की ताजगी बासीपन में है। आदमी का स्वभाव बदलना बहुत आसान नहीं होता। साधनहीनता की भट्ठी की आँच बड़ी तेज होती है। यहाँ की झुर्रियाँ कोई गिन नहीं सकता। यहाँ के गालों पर लालिमा की लहर कम दौड़ती है। *पर लोग हैं कि जिये जाते हैं और रोज़ रोज जीने के लिए रास्ता खोजते खोजते*

# यादो मे जागता शहर

जिस नगर की बात करने जा रहा हूँ वह बहुत खूबसूरत नही है। जो लोग जगह-जगह सुन्दरता खोजते घूमते हैं, उन्हे यहाँ निराशा होगी। यद्यपि यहाँ फूल हैं, उनमे सुवास है, अच्छे पार्क हैं, कुछेक साफ सुथरी सडकें हैं पर किसी के मुह से इस नगर का नाम सुनकर ज्यादातर लोग मुह बिचकाने लगते है। ऐसे भी व्यक्ति मिले हैं मुझे, जो नाम सुनकर नाक मे रूमाल लगाने का प्रयत्न करते हैं। क्या किया जाय। अपनी अपनी रुचि है। और रुचियाँ अलग अलग होती हैं। तीस-बत्तीस साल पहले जब पहली बार इस नगर को देखा था, मन मे जुगुप्सा भर गयी थी। दृश्यो की अनेक रीलें आँखो के सामने से गुजर गयी थी।

धुआँया चेहरा और काजल उगलने वाली मिलो की चिमनियो से बनती पहचान लिए नगर पहली बार थका थका-सा लगा था। बात बहुत पुरानी है। उस समय का वतमान अब जजर अतीत बन गया है। आज बनने के लिए आने वाला कल उत्सुक है। होगा, पर अतीत को मैं वर्तमान की दृष्टि से देख पा रहा हूँ।

सचमुच जो नगर लोगो के लिए गदा है, मेरे लिए उसमे कही न कही सफाई भी है। कहा जाता है कि यह नगर मुर्दा है। मैं कहता हूँ, असली जिन्दगी यही बसती है। सुना है, यहा मेहनतकशो को दो जून का खाना नही जुटता। मेरे विचार से इस नगर म बडे छोटे सभी को जिन्दगी जीने का सहारा मिल जाता है। और बडे लोग तो जहा भी रहेंगे, भली प्रकार जी लेंगे पर छोटो को ठिकाना सभी जगह नही मिल पाता है।

इस नगर का नाम कानपुर है।

मैं इसकी विसगतियो मे सगति खोजता हूँ। वाचाल लोग तो पता नही क्या क्या कहते हैं। यह बहुत झूठा नगर है। यहाँ की सचाई सारे देश म प्रसिद्ध है। कूडे के ढेर पर बसा है यह नगर। सफाई भी यहाँ कम नही है। बडा आलसी और निकम्मा नगर है कानपुर। अठारह सौ सत्तावन मे इसने अपने पौरुष का परिचय दिया था। यहाँ चाटुकारिता और चापलूसी भी कम नही है। जरा-सी

# यादो मे जागता शहर

जिस नगर की बात करने जा रहा हूँ वह बहुत खूबसूरत नहीं है। जो लोग जगह-जगह सुन्दरता खोजते घूमते हैं, उन्हें यहाँ निराशा होगी। यद्यपि यहाँ फूल हैं, उनमें सुवास है, अच्छे पार्क हैं, कुछेक साफ-सुथरी सड़कें हैं पर किसी के मुंह से इस नगर का नाम सुनकर ज्यादातर लोग मुँह बिचकाने लगते हैं। ऐसे भी व्यक्ति मिले हैं मुझे, जो नाम सुनकर नाक म रूमाल लगाने का प्रयत्न करते हैं। क्या किया जाय। अपनी-अपनी रुचि है। और रुचियाँ अलग अलग होती हैं। तीस-बत्तीस साल पहले जब पहली बार इस नगर को देखा था, मन मे जुगुप्सा भर गयी थी। दृश्यों की अनेक रीलें आँखों के सामने से गुजर गयी थी।

धुआँया चेहरा और काजल उगलने वाली मिलों की चिमनिया से बनती पहचान लिए नगर पहली बार थका-थका-सा लगा था। बात बहुत पुरानी है। उस समय का वतमान अब जजर अतीत बन गया है। आज बनने के लिए आने वाला कल उत्सुक है। होगा, पर अतीत को मैं वर्तमान की दृष्टि से देख पा रहा हूँ।

सचमुच जो नगर लोगो के लिए गदा है, मेरे लिए उसम कही न कहीं सफाई भी है। कहा जाता है कि यह नगर मुर्दा है। मैं कहता हूँ, असली जिन्दगी यही बसती है। सुना है, यहाँ मेहनतकशो को दो जून का खाना नहीं जुटता। मेरे विचार से इस नगर मे बडे छोटे सभी को जिन्दगी जीने का सहारा मिल जाता है। और बडे लोग तो जहाँ भी रहेंगे, भली प्रकार जी लेंगे पर छोटा को ठिकाना सभी जगह नही मिल पाता है।

इस नगर का नाम कानपुर है।

मैं इसकी विसगतियो मे सगति खोजता हूँ। वाचाल लोग तो पता नही क्या-क्या कहते हैं। यह बहुत गूठा नगर है। यहाँ की सचाई सारे देश मे प्रसिद्ध है। कूडे के ढेर पर बसा है यह नगर। सफाई भी यहाँ कम नही है। बडा आलसी और निकम्मा नगर है कानपुर। अठारह सौ सत्तावन म इसने अपने पौरुष का परिचय दिया था। यहाँ चाटुकारिता और चापलूसी भी कम नही है। जरा-सी

बात के लिए यहाँ तूफान खड़ा हो सकता है। सतिया काण्ड मे तो नगर म कई रोज कर्फ्यू लगा रहा। सेठ लोग अपने सफेद बुर्राक कुर्ते मे चुन्नट डलवाये गाव-तकिए के सहारे टिके हैं। दूसरी ओर झोपड़ी की धुआंई छाजन के नीचे अघपट खाय बूढ़े की रात नही बीत रही है।

भगवान के मदिर की स्वच्छता का बड़ा ध्यान है पर अपना आवास गदगी का ढेर है। कार्यालय की *थुक्का फजीहत तो कहीं भी देखी जा सकती है।* कचहरी, अस्पताल, महापालिका का दफ्तर और बड़े बाबू का कुर्ता सब एक जसे हैं। चित्र विचित्र डिजाइनें बनाती हुई पान की पीकें। यह शोभा है इस नगर की। शहर के बीच से गुजरने वाली नहर मे पानी की जगह कीचड बहता है। इसी कीचड से मजदूर अपने कपड़े साफ करता है। नहाता भी है। और कोई विकल्प भी तो नही है।

यह नगर गगा के किनारे कहने भर को है।

एक समय था जब गगा नगर के उत्तरी छोर को छूती हुई बहती थी। अब वह कात बहुत पीछे चला गया है। बीते समय की बात याद आती है तो दिल दहल उठता है। एक बार बड़े भाई को बिना बतलाये सरसया घाट से गगा पार गया था तर कर। चस्का पड गया। नित्य जाने लगा। गर्मी के दिन थे। सबेरे बूढ़ी साइकिल लेकर चला जाता था। चालीस रुपये मे खरीदी थी वह साइकिल। भैया को पता चला तो बहुत नाराज हुए। माफीनामे से छुटकारा मिला।

बुजुर्गों को कहते सुना है, जवानी के सात खून माफ होते हैं। अपनी गलती कबूल कर ली। मन मारकर पुन गगा पार करने की चेष्टा कभी नहीं की। कारण का तो मुझे पता नही पर अब गगा कानपुर से रूठ गयी है। श्रम शक्ति से मनाने की कोशिश भी की गयी पर इधर वह आती ही नही। तटबधो और घाटो पर हर हर गगे की याद भर बची है। अपावन का पावन बनाने वाली धारा की करतूत निहारती नगर की बचारगी असहाय मुद्रा मे है। नदी का वेग कूड़ा कचरा ढाता हुआ रुकने का नाम नही लेता। अपनी मस्ती में बहने वाली गगा युगो से अपने प्रेमियो का अभिवादन स्वीकारती हुई आगे बढी जा रही है। इसके मौन की भाषा को पढना बहुत आसान नही है। इसने समय पर काल का पटाक्षेप होते देखा है। और देखा है कि मौत को जीतकर समय और आगे खिसक गया है।

समय अनत है और कदाचित गगा का यह प्रवाह भी अनत ही है। कानपुर की आँखें अपलक देख रही हैं इस जल-लीला को। सरसया घाट पर होली मिलन का मेला देखकर लगता था जैसे प्रेम अपने अनेक चेहरो मे उतर आया हो

धरती पर। हर व्यक्ति एक दूसरे को भुजभर भेंटने को आतुर। प्रणाम, नमस्कार, जै राम जी और सलाम के साथ यहाँ चरण स्पर्श की परम्परा अभी चल रही है। प्रेम और आदर की रगीनी पर्व और त्यौहारो पर दिखायी पडती है। मजदूर और कारीगर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने म कोई कोताही नही करते। होली की उमग तो कीचड स होती हुई रग तक पहुँचती है। पिचकारी की नफासत कानपुर को पसद नही। टब मे डालकर सीधे रगस्नान करवा दिया जाता है। उसके बाद कही रग डालने की जरूरत नहीं रह जाती। अपने मन की मौज है। ऐसा दिन साल मे एक ही बार तो आता है।

यह नगर रसिको का है। अरसिक भी यहाँ कम नही हैं। रचनाकारो की पाँत लगी है। विश्वभरनाथ शर्मा कौशिक, प्रतापनारायण मिश्र, गणेशशकर विद्यार्थी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव और शील जी के नाम से सभी परिचित हैं। प्रेमचद ने यहाँ के मारवाडी स्कूल मे मुदर्रिसी की थी। कानपुर कटटो और बोरो का नगर है। यहाँ वणिकवृत्ति का बोलबाला है। आढतिया और धन्नासेठो की कमी नही है। यहाँ की मानसिकता पर बनियापन छाया रहता है। मेरे विचार स बनिया कोई जाति नही, एक मानसिकता है। वही चारो ओर छायी हुई है। कोई क्षेत्र अछूता नही बचा है। रचनाकारो पर भी उसकी छाप पडी है। इसी मानसिकता ने एक सीमा बनाकर रचनाकारो को बाँध दिया है। पैसा रचना करवा तो सकता है पर स्वय नही कर सकता।

जिन्दगी एक सतत प्रवाही नदी की भाँति है। जैसे नदी का पानी घटता बढता रहता है, वसे ही जिन्दगी सुख दुख के तटो से टकराती चलती है। ऊबड खाबड माग पर वह चचल हो उठती है। समतल भूमि पर उसमे समरसता आ जाती है। कानपुर की जिन्दगी भी कुछ इसी तरह है। ठेठ हिन्दुस्तानी शहर है यह। यहाँ न तो लखनऊ की नफासत है और न दिल्ली का अजनबीपन।

अशिक्षा और गरीबी से अभिशप्त है यह नगर। दो जून की रोटी के जुगाड मे लगे बच्चे शिक्षालय कब जाएँगे। अधफटे और मैले कुचले वस्त्रो मे लिपटे अनेक ऐसे बच्चे मिल जाएँगे जिनके भविष्य पर अँधेरा पुता हुआ है। किसे कोसा जाय, किसे उत्तरदायी ठहराया जाय। सभी एक-दूसरे पर दोषारोपण कर रहे हैं। नगर के माथे पर विश्व बैंक का पैसा बरसता है पर चरणो तक पहुँचता ही नही। और चरण हैं कि कभी कोई शिकायत नही करते। उनका रिश्ता जमीन से जुडा हुआ है। कहते सुना है उन्हे कि पहाड चाहे जितना ऊँचा हो जाय पर टिका तो वह धरती पर ही है।

मैं सात आठ वर्ष कानपुर रहा। उच्च कक्षाओ की पढाई लिखाई वही की। साइकिल मेरी रात दिन की साथी थी। तब तो यह नगर इतना बडा नही था

पर बडप्पन की ओर बढ रहा था। पास मे पैसा बहुत कम होता था। आवश्यकताएँ कम थी। जीवन मे उच्चादर्श के प्रति समपण था। विद्यार्थी था। गुरु जी ने कभी सिखाया था कि कौवे की चेष्टा, बगुले का ध्यान, श्वान की नीद और गृह त्याग ही विद्यार्थी के लक्षण हैं।

लक्ष्मीपुरवा की एक अँधेरी कोठरी म रात रात जागकर परीक्षा की तैयारी करता था। दोस्तो की सख्या कम क्या बहुत कम थी। उन दिनो ग्रीन पार्क, लाल बगला, मेस्टन रोड, लाटूश रोड, परेड रोड, पी रोड, जरीब चौकी, जूही, बिरहाना रोड, कपनी बाग, फूल बाग, गुमटी नम्बर पाच, गाधी नगर, आचाय नगर, राम बाग और ऐसे ही अनेक नाम। साइकिल ही सहारा थी। जिस मुहल्ले मे मैं रात बिताता था, एक बार उसकी गन्दगी देखकर पडित जवाहरलाल नेहरू ने नाराज होकर कहा था कि एसे स्लम एरिया को साफ कर देना चाहिए। कहकर वे तो चले गये थे पर वह मैला-कुचैला मुहल्ला अपनी जगह अभी तक कायम था। एक बार वे सन् साठ या इकसठ में कानपुर गए। छावनी एरिया म बडी सभा हुई। भाषण देते हुए उन्होने कहा कि भाषण के बाद वे फूलबाग मे स्थापित गणेशशकर विद्यार्थी की प्रतिमा का अनावरण करने जाएँगे। जाएँगे तो पर प्रतिमा कैसी होगी, यह अनुमान लगाना कठिन है। कहना था उनका कि कानपुर पसे वाला शहर है और जहाँ पैसा ज्यादा होता है वहाँ कला की पहचान नही होती।

उन्होंने ठीक ही कहा था।

विद्यार्थी जी की प्रतिमा तो उतनी आलोच्य नही थी पर मूलगज के चौराहे के पास लाटूश रोड वाले नुक्कड पर लगी सरदार भगत सिह की अर्ध प्रतिमा को देखकर कानपुर की अनगढ कलाप्रियता का पता चल जाता था। मैं कांच का मदिर या जे० के० वाले मदिर की भव्यता की तारीफ करता हूँ पर वहाँ तो व्यक्ति विशेष का सोच है। और पैसे की माया तो है ही।

गरीबी मे ईमान होता है। गरीबी का आधार सचाई है। और मनोविनान यह भी कहता है कि जहाँ समाज मे अधिकाश लोग हेरफेर करके गुलछर्रे उडा रहे हो वहा साधनहीन व्यक्ति मौन साधे कब तक परीक्षा देता रहेगा। ऐसी हालत मे यदि वह अपने माग म भटक जाय तो उसका क्या दोष। ऐसे भटके हुए तमाम लोग कानपुर मे मिल जाएँगे। और वही क्यो, सभी जगह मिलेंगे।

मैंने देखा है कानपुर मे प० मुशीराम शर्मा जसे ख्यातनाम प्राध्यापक ने जरूरतमद छात्र छात्राओ की मदद करके उपकार का कभी ढोल नही पीटा। प० अयोध्यानाथ शर्मा जैसे शालीन शिक्षक ने अनेक शिक्षार्थियो की नैया पार लगायी है। आचाय कृष्णशकर शुक्ल जैसे प्रखर समीक्षक और चिन्तक अपने कुशल अध्यापन और साफगोई के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। यह मेरा समय था। मैं

गवाह हूँ। डॉ० ब्रजलाल वर्मा अपन शिक्षण कौशल से स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थियो का मन मोह लेते थे। उधर अग्रेजी मे शारदाप्रसाद जी रोमैंटिक कविता के लिए प्रसिद्ध थे। नीरज जी का कारवा यहाँ स ही गुजरा था। कानपुर के इतिहास मे अनेक इतिहास बसे हुए हैं।

यहाँ आसमान छूने वाली अट्टालिकाएँ नही हैं। किदवई नगर मे एक मकान बहुत ऊँचा उठ रहा था तो हवाई जहाज टकराने के डर से महापालिका ने उस पर रोक लगा दी थी। अधूरी हालत म वह अभी भी आसमान ताक रहा है।

कानपुर की गतिशीलता मे तीव्रगामिता नही है। मैं तो कहूँगा बबई और दिल्ली की तुलना मे यह शहर बैठा हुआ लगता है। स्वभाव स कास्मॉपालिटन नही है यह। इसमे कस्बाई कल्चर ज्यादा है। महानगर की महिमा से यह मडित नही है। कारण कि शारीरिक श्रम करने वालो की सख्या बहुत अधिक है। अहात की जिन्दगियो को कोई गिन नही सकता। तमाम लोग ऐसे हैं जो कानपुर के रिकाड में यहाँ के निवासी ही नही होगे। जहाँ निरक्षरता है, बेबसी और मुफलिसी है, किसी तरह पट पालने की मजबूरी है वहाँ कोई नयी वात दिमाग मे आयगी कसे। इसीलिए अपनी अपनी असमथताओ मे लिपटे लोग जिये जा रहे हैं। जिन्हें दूसरो के बारे म सोचना ही नही है उनकी तो पौ बारह है। कोई चिन्ता नही है। ऐसे लोगो की सख्या कानपुर मे कम है।

अब के कानपुर स पचीस वष पहले के कानपुर की तुलना करता हू तो परिवतन की तमाम उपलब्धियों के कारण तुलना सभव ही नही लगती। जहाँ धान की फसल लहराती थी, वहाँ अब बस्तियाँ उग आयी हैं। उस समय के युवाओ के चेहरे अधेड हो गए हैं। कारवा तेजी से आगे बढा जा रहा है। जिन गलियो और सडको पर घूमते हुए मन नही भरता था वहाँ जाने का मन नही होता। अजनबी हो गया है नगर। यादो की की डोर पकड कर चलता हू तो गन्तव्य पर अपना कोई आत्मीय दीखता ही नही। कुछ नये पुराने सगी साथी हैं जिनस मिलकर क्षण भर के लिए अतीत जी लेता हूँ पर क्षण भर का जीना भी कोई जीना है। जीवन जीने के लिए निरन्तरता चाहिए। पर यह किसके भाग्य मे बदा है।

याद करता हूँ।

तारीख शायद चार जून थी। सन् ठीक से याद नही। पहली मई को दिल्ली से गाँव चला जाता था। रास्ते म कानपुर रुकता था। और सचाई यह है कि कानपुर छोडकर आगे जाने का मन ही नही होता था। तो जून की भयकर गर्मी थी। अपने साथियो से जिक्र किया कि शलेन्द्र की फिल्म 'तीसरी कसम' बहुत अच्छी है। जयहिन्द टाकीज मुख्य शहर से दूर है पर निश्चित समय पर अपने दो दोस्तो के साथ फिल्म देखी। फिल्म का अतिम दृश्य बहुत मार्मिक था, हृदय को

छू लेने वाला। प्रेमानुभूति का वह क्षण पाने के लिए मैं अनेक बार तीसरी कसम देख चुका हूँ। पास आयी हुई बात भी एकदम से छूट जाती है। और यह क्रम अभी जारी है। और शायद अत तक सिलसिला खत्म नही होगा। यही मैं चाहता भी हूँ।

*निराला ने कनौजियों के बारे म कहा था कि ये जिस पत्तल पर खाते हैं* उसी मे छेद करते हैं। उन्होने किसी एक घटना का सामान्यीकरण किया था। मेरा अनुभव दूसरा है। कानपुर कनौजिया का गढ है। यहा सभी प्रकार के लोग हैं। ऐसे भी मिल जाएँगे जिनकी सराहना करते मन नही भरता और कई ऐसे भी मिलेंगे जो दारुण दुख देकर ही जाएँगे। यह तो दुनिया है भाई। तमाम रगो और रेखाओ वाली दुनिया। बिना इसके समीप गए पहचानना मुश्किल है। कानपुर के बुद्धिजीवी उस कपडे के भाँति हैं जिसके ताने बाने का पता पाना मुश्किल है। यहा होलटाइमर साहित्यकार भी हैं। ऐसे रचनाकार भी हैं जो राजनीति की पखी से साहित्य की हवा झलते हैं।

कवि सम्मेलनी कवियो की अच्छी-खासी फसल यहाँ हमेशा खडी मिलती है। यदि आप कविता म रुचि रखते हैं तो बिना चाहे ऐसे कवियो से भेंट हो जाएगी जो सम्मेलन मे बुलावे के तारो से आपको दबा देंगे। कहेंगे—"अब आप ही *बतलाइए, कहा कहाँ जाऊँ मैं ? जसे दुनिया म मैं ही एक कवि हूँ ? इतना हैरान* नही करना चाहिए। तार दिया। अग्रिम किराया भेजा। यह भी कहा कि हवाई जहाज से चले जाओ।"

इमरजेंसी के बाद मेरे एक मित्र कानपुर नगर के डी० एम० हो गए। उनका कहना था कि शहर मे ज्यादातर अपराध राजनीति के कारण होते हैं। बडे नेताओ के लडके अपने को खुदा से कम नही समझने। पकडे जान पर अधिकारियो के पास बडी बडी सिफारिशें आती हैं। छूट जाने पर अपराध के चेहरे पर जीत की लहर दौड जाती है। जो लोग माइक पर चीख चीख कर अपराध खत्म करने की बात करते हैं वही अपराधियो को छोडने की सिफारिश करते हैं।

कानपुर की जनता न्याय और त्वरित न्याय के पक्ष मे है। एक ढोगी ने अपने को सुभाषचन्द्र बोस कहकर बडा मजमा इकट्ठा किया। असलियत का पता चलते *ही हायतोबा मच गई। जनता ने न्याय देने मे देर नही की।*

इतिहास के पन्नो पर अजीजन, नाना, लक्ष्मीबाई आदि का नाम कानपुर के प्रसग मे लिया जाता है। गणेशशकर विद्यार्थी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, एम० एम० बनर्जी उसी परम्परा को आगे बढाते हैं। और भजवनीप्रसाद दीक्षित उर्फ 'घोडे वाला' के नाम से पूरा देश परिचित है। सुना है विदेशो म भी इस नाम की बडी चर्चा है। 'घोडे वाला' हमेशा घोडे पर ही चलता है। चुनाव लडना उसकी हॉबी है। युवको म अधिक लोकप्रिय होने के कारण एक बार लोकसभा के चुनाव मे

घोड़े वाले ने अपनी जमानत बचा ली थी।

भरी सभा मे भाषण देते समय किसी श्रोता ने कह दिया था कि दीक्षित पागल है। उत्तर मे उस विचित्र राजनेता ने कहा था—"हाँ, मैं पागल था। पागलखाने के अधिकारी ने मुझे प्रमाण पत्र दिया था कि अब मैं पागल नही हूँ। तुम जितने यहाँ बैठे हो किसी के पास है ऐसा सर्टिफिकेट ? प्रमाण पत्र हवा मे लहराते हुए घोड़े वाले ने कहा था। सभी श्रोता वक्ता का मुह ताकने लगे। इसी तरह के अटपटे सवालो के सटीक उत्तर दीक्षित की जुबान पर रहते हैं। एक समय तो वे युवको के मसीहा बन गए थे।

यह शहर नगा है। यह इतने कपड़े पहने है कि शरीर पर बोझ सा लदा है। कभी कभी यह विसगति अपनी चरम सीमा से होती हुई आगे निकल जाती है। यह दुनिया है गरीबी की, यह लोक है अमीरो का। यहाँ की ऊबड़-खाबड़ सड़कें कही-न-कही पहुँचती तो हैं पर चलने वालो के परो के छाले नही गिने जा सकते। धुआँ उगलती चिमनिया वाली मिलें कपड़ा, जूट, चमड़ा और लोहा उद्योग को आगे बढ़ाने मे तत्पर हैं। विज्ञान मनुष्य को खुशहाल करने की डीग हाँक रहा है पर भारी लदान वाली ठेलियो को आदमी पसीना पोछता हुआ खीच रहा है। ठेल रहा है। श्रमशक्ति के पैरो मे जूते नही हैं। चीक्ट कपड़ो से तन ढका है किसी प्रकार। टाट मिल और किदवई नगर के पुल की चढ़ान पर ठेलियाँ खीचने वाले किचकिचा जाते हैं। अगर कोई गलती हो गई तो थाने वालो की धौंस ऊपर से। सिपाही इन मेहनतकशो की जेब से अठन्नी चवन्नी तक निकाल लेता है। मजदूर उन्हें यमराज कहता है। रिक्शे वाले थर्राते हैं। तोप-तमचा हाथ मे है। किसी की हिम्मत नही कि उलझे उनसे।

वर्षों पहले की बात है। सन् बासठ तिरसठ। रात का एक बजा था। श्रमिक बस्ती बाबूपुरवा के मकान नम्बर 304/4 मे मैं लेखन-कार्य कर रहा था। सारी बस्ती का सन्नाटा साँय साँय कर रहा था। जून का महीना। दिन की गर्मी थोडी कम हुई थी। कड़कती हुई आवाज मे किसी ने नीचे से कहा—'कौन है जो अभी तक बत्ती जलाये है ?" खिड़की से नीचे झाँका मैंने। वर्दिया साइकिल थामे नीचे खडी थी। दारोगा ने कहा—"बद करो बत्ती। रात को बत्ती जलाना मना है।" कोई तनाव नही, कर्फ्यू की रात नहीं, ब्लैक आउट नही, फिर यह घुड़की क्यो ? मैंने कहा—"मैं कुछ लिखने का काम कर रहा था। और वहाँ बत्ती जलने से किसी का नुकसान तो नही हो रहा है।" "जुबान लड़ाता है। कहता हूँ बत्ती बद करो और सो जाओ।" मैंने पुलिस से हील हुज्जत ठीक नही समझी। ताजीरात हिन्द के अलावा उत्तर प्रदेश का एक अलग ताजीरात है। उसी के आधार पर गरीबों और अनपढ़ो को ढोरो की भाँति हाँका जाता है। डडे की चोट, गालियो की बौछार और बदूको के छर्रों की भाषा मे रहम के निशान नही होते। पुलिस

यही भाषा जानती है। वह अधिकारियो, अमीरो और नेताओ की सुरक्षा का ध्यान रखती है। ईश्वर ही मालिक है बाकी लोगो का।

कानपुर का आसमान सदैव धुआँया रहता है। नीले रग पर न्हे न्हे श्याम कणो से बँटी हुई कालिमा छायी रहती है। मिला के इलाके म यह श्यामलता और घनीभूत हो जाती है। कभी कभी सूय को पहचान मे छिप जाती है। जाडे की रातो मे सघन कुहरे मे खोया शहर सवेरे अपनी अस्मिता खोजने लगता है। कानपुर के अतीत की छाप वतमान पर नही है। और खुरदुरे वतमान के फलक पर स्याह सफेद सभी कुछ चिन्नित है। सभव है लकदक खादी मे सजे ऐसे नेता मिल जाएँ जिन्होने फरेबी चाल और झूठ से अपनी जिन्दगी की चादर का ताना बाना तैयार किया हो। ऐस सपादक से भेंट हो सकती है जिसने दूसरे की मेहनत पर अपना नाम छपवा दिया हो। ऐसे समाजसेवी भी मिल सकते हैं जिनका इसानियत से कभी रिश्ता ही न रहा हो। जरायम पशा वालो की सख्या कम नही है। लुपन की शरणस्थली है कानपुर। ऐसी नारिया मिल सकती हैं जो तोताचश्म होने मे तोतो को भी बहुत पीछे छोड आई हैं।

ऐसे मित्रो से भरा है कानपुर जो अपने साथी की पुकार सुनकर सदैव सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। वे भी दोस्त हैं कानपुर मे जो स्वाथ के लिए अपने मित्र के लिए धोखे का पुल रच लेते हैं। ऐसे आचाय कानपुर में हुए हैं जा शिष्य की ऊँचाई मे अपना गौरव देखते हैं। ऐसे शिष्य हुए हैं इस नगर मे जिन्हाने अपने गुरु के कमण्डल को ही अपावन किया है। गुणवती और स्नेहिल स्वभाव की भी नारिया हैं यहाँ जो अपने व्यवहार की खुशबू से प्रभावित करती हैं।

यह शहर एक पूरी गाथा है। मेरी सात-आठ साल की जिन्दगी इसका बहुत छोटा भाग है। ऐसी कई जिन्दगिया साथ साथ रही हैं। अपनपौ के गारे से जुडी हुई स्मति की ईंटो ने बडी मजबूत इमारत बनायी है। भागती हुई सडको के छोटे छोट इतिहास मे चेहरो की भागदौड लिखी है। लिखा है कि कभी कभी एक अकेला आदमी पूरा शहर जीता है। हृदय पर उसका अक्स उतर आता है। ऐसा चित्र स्मरण मे सदव चमकता रहता है।

जी० टी० रोड दक्षिणी छोर पर कानपुर को दो भागो मे बाँटती हुई पश्चिम से पूव की ओर चली गई है। ट्रको के चलते हुए काफिले की लम्बाई से यह रोड आसानी से पहचानी जा सकती है। अपने और पराये की ऋजु रेखाओ के बीच कोई एक बिन्दु है जिस पर नगर का होना पाया जाता है। पूव, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की सस्कतियाँ यहाँ अपनी अपनी छवियो की सुरक्षा म तत्पर हैं। केन्द्रीय सरकार की आयुध निर्माणियो के कारण सभी इलाको के लोग यहाँ आ जाते हैं। पर मध्य देशीय ग्रामीण सस्कृति का प्रभाव सभी जगह पहचाना जा

सकता है। महानगर का निवासी जिसे पिछडापन कहता है, वह यहाँ के जीवन का अग बन चुका है।

कानपुर एक वृत्त मे देखता है।

इस प्रकार का दष्टि निक्षेप उसकी नियति है। जो इस वत्तात्मकता से बाहर आ जाता है उसे यथार्थबोध की जमीन मिल जाती है। यह नगर प्रभावित होता नही, करता है। इसकी विशेषताएँ जानने के लिए अखबारी खबरो से काम नही चलेगा। वहाँ कुछ समय रहना होगा। फिर पता चल जाएगा कि जीवन का दूसरा नाम है कानपुर। इसमे अन्दर-बाहर की काफी समानता है। चीन के साथ युद्ध वाले अवसर पर कानपुर के खून मे घुला राष्ट्रप्रेम, जो मैंने अपनी आँखो से देखा था, अभी तक भूला नही है। अन्य शहरो की भाँति कानपुर के पास गालिया का अपना खजाना है। वातावरण मे क्रोध की आँधी आयी नहीं कि गालियो की बौछार शुरू। जनता का यह हथियार हमेशा तना रहता है। जो लोग साक्षर नही हैं मेहनत मजदूरी करके किसी प्रकार अपना पट पालते हैं उनके क्रोध को गालियाँ ही कम कर पाती हैं। पूरे नगर पर श्रम सस्कृति का ही प्रभाव दीखता है। और यह प्रभाव स्थायी है।

सडको की चढाई और ढलानो पर हाँफते और गुनगुनाते रिक्शे वालो की फौज आती-जाती रहती है। बकरमडी, कचहरी, जूही पुल और किदवई नगर की याद स्वाभाविक है। इन ढलानो से अनेक बार गुजरा हूँ। जिन्दगी के ग्राफ की लकीर जसी बनती हैं यहाँ की सडकें। रामबाग, गाधीनगर और प्रेमनगर के चेहरे वैसे ही हैं अब तक जबकि बाहरी कानपुर की तस्वीर ज्यादा साफ-सुथरी है। अब तो शहर फैलता जा रहा है। आबादी का अधिभार झेलकर समाज खीकता है। पर इससे क्या ? भगवान की कारगिरी पर मजाल है कि कोई उँगली उठाये। अपनी गलतियाँ भी आदमी खुदा के खाते मे डाल देता है। कानपुर ऐसा सरोवर है जिसमे जितना जल आता है, उतना निकलता नही है।

सुरती, पान और मसाला का प्रभाव इस शहर को रगीला बनाए है। नशा-खोरी का जोर मजदूरो मे ज्यादा है। पान की पीको से लहू लुहान लगता है पूरे शहर का चेहरा। बचपन बीतते-बीतते पान, खैनी, दोहरा आदि का सिलसिला शुरू हो जाता है। यहाँ की दादागीरी बिना पान के नही जमती। बस, दफ्तर, घर, सडक, कमीज, कुर्ता, पट और धोती पर पीक की लाल छापी हर जगह देखने को मिल जाएगी। गम गलत करने के लिए बीडी, सिगरेट और शराब भी पीछे नही है पर इससे शहर की पहचान बनती नही दीखती।

जसे जसे व्यवस्था की सुरगो को पहचानने की कोशिश कीजिए, नये मापक और उदाहरण मिलते जाएँगे। सदियो स चले आए राज काज मे धन की प्रमुखता रही है। कोई काम न बनता हो, पैसा फेंकिए, काम बन जाएगा। और फिर

इसका कोई अन्त नही है। नगर निगम, थाना पुलिस, चुगी विभाग, रेलवे, रोडवेज, विश्वविद्यालय कोई दूध का धोया नही है। सभी का रक्त एक ही रग का है।

पूव की ओर से गगा को प्रणाम करता हुआ सूरज निकलता है। बाँस भर ऊपर आते-आते यह धुआँने लगता है। पश्चिम मे डूबते समय वह गगा को पुन-अभिवादन निवेदित करता है। यह लोहिया शहर चुपचाप देखता रहता है रोज रोज यह दृश्य। सूत का कपडा बुनने वाले इस शहर का रूप कपासी नही है। यह रूप का नही शक्ति का शहर है। यह फूल की नही फल की दुनिया है। यहाँ पुराने रास्तों पर चलने का चलन है, नया खोजने मे कौन सिर खपाए। यह बुद्धि का नही शक्ति का देश है। यहाँ नायक नही खलनायक जनमते रहे हैं। कोई न माने तो गगा की गवाही दी जा सकती है।

कानपुर की सेण्ट्रल जेल गुलामी के दिनो म यातना शिविर के रूप मे थी। वही से रामप्रसाद बिस्मिल ने भगतसिंह के नाम एक कविता भेजी थी। उस रचना की दो पक्तियाँ इस समय याद आ रही हैं—

> मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या ?
> दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या ?

प्रतीत होता है बिस्मिल की जुबानी कानपुर अभी तक यही दुहरा रहा है।

# सर्पिका ही सई है

नोनहा घाट के बारे मे मैं कुछ नहीं जानता था। बचपन के दिन थे। इतना ही काफी था उन दिनों कि नोनहा सई नदी का एक घाट है। घाट ही नही, औघट घाट है। इस घाट के साथ बहुत-सी यादें जुडी हैं। पर हैं सभी बचपन की यादें।

तराई वाले खेत से मटर की फलियाँ तोडना। टीले वाले पेड का मीठा महुआ चुनना, नदी मे धोना और फिर छलाँग लगाना। अगर नदी गहरी हुई तो बैल की पूँछ पकडकर उस पार जाना। जाडा लगा तो गरम बालू पर लोटना। यह खेल अखण्ड लगता था। कभी भान नही हुआ कि उम्र बढ़ जाने पर यह खिलवाड खत्म हो जाएगा। यह दुनिया छूमन्तर हो जएगी।

इस समय वह घाट यहाँ से बहुत दूर है।

छोटी नदी का घाट है। कौन पूछता है छोटो को। इस जमाने मे तो और भी नही। गगा और यमुना का घाट होता तो और बात थी। दक्षिण की गगा कहलाने वाली गोदावरी होती तो भी काम चल जाता। यह तो सई है, जिसे कम लोग जानते हैं। हरदोई जिले से आती है। उन्नाव, रायबरेली, प्रतापगढ़ होती हुई जौनपुर म गोमती से मिल जाती है। गोमती आगे जाकर गगा से मिलती है। यानी सई की धारा का तालमेल कही न कही गगा से है।

यदि कोई मुझसे यह पूछे कि प्रकृति म मुझे क्या प्रिय है? मेरा उत्तर होगा 'नदी'। सवाल आगे बढेगा—"कौन सी नदी? यह सवाल करते समय पूछने वाले के मन में उत्तर अपने आप भी उतर सकता है। गगा, चबल, नमदा, महानदी, तमसा, चन्द्रभागा कोई भी नाम अनुमानित हो सकता है। पर मेरा उत्तर बहुत छोटा है। केवल सई'। यही नदी मुझे प्रिय है। बचपन की सगिनी है। स्मृतियों के पख लगाकर मन उडता है। सई के रेतीले तट पर धीरे धीरे चलते हुए सारस के जोडो म कहीं खो जाता है। केवल एक ही दृश्य नही है। आँख खोलिए और दृश्यछवियो का ताँता लग जाता है। पशु, पक्षी, जलचर, वनस्पतियाँ, आसमान की नीलिमा और आदमी की करतबी दुनिया के दृश्य सई के साथ चलते रहते हैं।

इनकी स्थिरता भी गतिशील है। इनके मौन मे वाचालता है।

सई का नाम जातक ग्रथा मे 'सर्पिका' है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण म इसे 'स्यदिका' कहा है। सई की गति सर्पिल है। साँप की भाँति रेंगती हुई चलती है। यदि वाल्मीकि ने वरसात की सई देखी होगी तो उन्हें रथ की गति और स्वर का ध्यान आया होगा। तभी उन्होने इसे स्यदिका कहा होगा। वे सभी तत्सम नाम अतीत के अँधेरे मे विला गए। अब 'सई' नाम ही लोकग्राह्य है। छोटे बडे सभी की जुबान पर यही नाम है। जन रुचि अपना वतमान देखती है। बीते हुए कल के झमले मे वह नही पडती। यदि वतमान साथक होगा तो अतीत भी भला लगेगा। हाँ, आज के अँधेरे मे घिर जाने पर कल का उजाला याद आना स्वाभाविक है। गोस्वामी तुलसीदास को भी 'सई' नाम ही प्रिय है। सई की धारा मे तीनो काल समाहित हैं।

अतीत तो रेत हो गया है घिस घिसकर। वतमान निरन्तर बह रहा है। भविष्य आँखो से ओझल जरूर है पर वतमान बनते ही आगे आ जाता है और अतीत वनने के लिए बडी त्वरा से छिप जाता है।

जैसे मनुष्य की जिन्दगी है, वैसे ही है सई का जीवन।

मेरे लिए जीवन की कल्पना इतनी विशाल है कि प्रलय की बात सोचने की हिम्मत ही नही पडती। सोचता हूँ, यदि कभी प्रलय मे मनुष्य खोएगा तो उसी उथल पुथल मे सई भी खो जाएगी। जब मनुष्य ही नही रहेगा, नदी रहकर ही क्या करेगी। जिन्दगी और नदी मे बडी समरूपता है। दोनो की प्रकृति एक है जैसे जन्म और मत्यु के बीच जीवन फैलता है वैसे ही उद्गम और समागम के मध्य नदी का व्यक्तित्व खिलता है।

सई को पहाड से झरने का अवसर नहीं मिला।

उदगम स्थल पर मैदान मिला। रास्ता भी समतल भूमि पर ही चला। अत तक मदान ही मैदान। कुश कास सरपत, कथा बेर, बबूल बकाइन, सिहोर सभी सगी साथी बने। आम और महुआ के छतनार वृक्षो की छाया मे बहती है सई। फागुन चैत म चूते हुए महुआ के मक्खनी फूलो की मादक खुशबू मे सराबोर हो जाती है। कही कही तो ये फूल सई के कण्ठहार रचते चलते हैं। फूल तो बस फूल हैं। लहरो के बहाव पर झूलते हुए धारा का साथ देते हैं ये फूल। जो भी समीप आता है, सई अपनी गोद मे भर लेती है।

आम की सुनहरी मजरियो की गमक से आपूरित होकर यह पगली नदी रुकने का नाम ही नही लेती। और फिर लगते हैं टिकोरे। बच्चो मे होड-सी लग जाती है। तपती दोपहरी मे नदी नहाया और टिकोरे तोडे। मालिक के आने के डर से भाग जाते हैं कभी-कभी। सई चुपचाप बाल लीला देखती रहती है। आम पक जाने पर उमगित हो उठती है आसपास की दुनिया। एक कोई डाल हिला

आया। गल्लू गल्लू आम नदी मे गिरकर तैरने लगे। छपोक [illegible] लूट मच गई। बच्चे, बूढे, जवान सभी आम खोज रहे हैं, पा[illegible] है [illegible] कौतुक की [illegible] है सई। गर्मी का मौसम है। पानी ज्यादा है नही। बाल [illegible] जैसी है यह [illegible]। जहाँ यह गहरी है वहाँ जाने की हिम्मत वही करता है, जो तैरना जानता है।

अनेक जीव जन्तुओ की प्यास बुझानी है सई। पालतू जानवरो के अलावा जगली पशुओ का भी इसे ध्यान रहता है। जिस नोनहा घाट की बात मैंने उठायी थी, वैसे घाट तमाम है सई पर। गाडी घाट, सुकलन घाट, रेतहा खिडकी घाट, गुलरिहा जैसे नाम लोगो की जुबान पर चढे हैं जिस घाट की जैसी प्रकृति वैसा उसका नाम। गाडी घाट से बलगाडियाँ गुजर जाती थी। सुकलन घाट शुक्ल खानदान के नाम पर था। रेतहा पर रेत बहुत है। खिडकी खाट की ओर कँथोला के राजा के महल की खिडकी खुलती थी। गुलरिहा घाट पर निश्चित ही गूलर के वृक्ष रहे होगे। रही नोनहा की बात। गाधी बाबा की पुकार पर वहाँ नमक बनाया जाता था। घाट से थोडी दूर पर अभी भी कुछ सकेतक बचे हैं। भूमि का एक छोटा सा टुकडा सीमेट से पक्का किया गया है। वहाँ अब चरवाहो का विश्राम होता है।

दोमुहाँ साँप तो सभी जानते हैं पर दोमुही नदी शायद ही किसी ने सुनी हो। सई अपनी सर्पिल गति के कारण दोमुहाँ नदी बनाती है। दुइमुहियाँ नाम से यह विख्यात है। एक ओर से दक्षिण की ओर बहती हुई सई घूमघाम कर मीलो की यात्रा करके उत्तर की ओर बहने लगती है। यहाँ दक्षिण और उत्तर की धाराओ को दुइमुहिया बरसात मे मिला देती है।

बाढ आने पर दुइमुहियाँ के उस पार का गाँव टापू बन जाता है। सई चारो ओर से घेर लेती है। कुओ मे पानी भर जाता है नदी का। मवेशी बह जाते हैं। कच्चे मकान ढह जाते हैं। छाजन नदी के तेज बहाव मे बह जाती है। पानी का फैलाव देखकर लगता है कि तेज धारा मे गाँव उखड कर बह जाएगा। पक्के मकानो की दीवारें दरक जाती तो विश्वास ही नही होता था कि यह वही सगिनी है जो हमे जीवन देती थी।

इस आजाद देश मे दुइमुहियाँ के कारण बने टापू की असहाय आवाजो को सुनने वाला कोई नही होता। न तो हाकिम और न हुक्काम। सावन भादो मे पागल होकर बहती है सई। इसकी उद्दत चाल बस्तियो को बरबाद कर देती है। एक समय हम जिसकी गोद मे विहार करते थे, वह विकराल हो जाती है।

कई साल पहले सई मे भयकर बाढ आयी थी। मैं नवी कक्षा मे पढता था उस समय। मुख्य धारा से लगभग तीन चार फर्लांग पानी इस पार उस पार फैल गया था। रेतहा घाट पर आम का एक पेड था। उसका कधा छूकर बह रहा था पानी। राजा काका ने मुझे ललकारा। चलोगे उस पड के पास ! आम पका था।

अच्छे तैराक थे राजा काका। नदी का साथ पाकर बच्चा के साथ बच्चे बन जाते थे।

कैशोर्य मन बड़ा उत्साही होता है। ललकार की सान पर चढ़कर वह उत्साह और धारदार हो जाता है। ऐसी स्थिति म उत्साही के लिए कोई वस्तु दुष्प्राप्य नही रह जाती।

निश्चय किया गया कि घाट वाले पेड का आम खाकर वापस आएँगे। राजा काका कई तरह से तैरते थे। मैं उतना निष्णात तो नहीं था पर हिम्मत थी कि डूबूगा नही।

दोनो साथ साथ तरन लगे।

काफी दूर निकल जाने पर मुझे थकान महसूस हुई। राजा काका भाँप गए। आदेश हुआ—"थोडा और चलो। सामने पासिन की बगिया डूबी हुई है। किसी पेड की डाल पकडकर सुस्ता लेंगे। गहरे पानी मे तैरते हुए थक जाने पर टहनी का सहारा भी काफी होता है। सकट मे पडा जीव सहारा चाहता है।"

अब मैं आम के उस पेड के पास पहुँच गया था जो आधा पानी में डूबा हुआ था। जैसे ही टहनी का सहारा पान के लिए मैं लपका, 'छिअऊ' की आवाज ने मुझे चौंका दिया। एक फेंटार (कोबरा) दूसरी टहनी को अपनी शरणस्थली बनाये था। सई की उफान ने उस भी सताया था। मुझे देखकर उसने सोचा होगा, यह दूसरी आफत कहाँ स आ गई ?' उस क्या पता कि मैं भी उसी की तरह सताया हुआ हूँ। उसकी दूसरी फुफकार ने मेरी हिम्मत के किले को ढहा दिया। अब तक राजा काका की निगाह साँप पर पड गयी थी। वे बोले, "बडा गुस्सैल होता है फेंटार भागो वहाँ से।"

*सई मुझे भयकर दीख रही थी।*

पानी के अपार रेले म जीव-जतु अपने प्राणो को बचाते बह रहे थे। प्राण-हीन शरीर शव की सज्ञाओं म लिपटे हुए धारा की चपेट म अदृश्य हो रहे थे। धारा थी एकदम लापरवाह। जवानी के जोश मे जिसे पाएगी बहा ले जाएगी। अनेक सज्ञाए प्राणहीन होकर इस पार लग रही थीं और कई उस पार चली गयी थी। मुख्य धारा बडी कौतुकी दीखती थी। किसी तरह आम के उस पेड तक पहुँचा था मैं। पके आम भी खाये थे पर लौटे थे नाव से।

*आग और पानी का एक ही स्वभाव है।*

मात्रा कम है तो जिन्दगी है अन्यथा मत्यु का दूसरा रूप है। सई की भी यही प्रकृति है। उद्गम स्थल पर तो यह छोटे नाले की भाँति बहती है पर मुहाने तक जाते जाते फैलती जाती है। रास्ते मे कही तो पुराने समय में बने हुए राजाओ के महलो के खँडहर हैं और कही किसी कोट की बारादरी सई के तट पर लुढकी पडी है।

इतिहास की गुफाएँ अधकार से घिरी हैं। वतमान को अतीत के बारे मे कुछ सूझता ही नही। बारादरी का प्रसग आया तो इतिहास आँखें मुलमुलाने लगा।

किसी समय अवध मे अंग्रेजो ने बहुत उत्पात मचाया था। रामपुर (कसिहा) के रामगुलाम सिंह के कोट की बारादरी बहुत ऊँची थी। लोक-स्मृति के साक्ष्य के आधार पर अंग्रेज सई के किनारे बने इस कोट पर कब्जा करना चाहते थे। बासो के झुरमुट मे था कोट। सवारी का कोई साधन मुश्किल से मिलता था उस जमाने मे। वहा तक सडक थी नही। ठेलिया पर एक तोप लादकर अंग्रेजो ने सई को पार किया। महुए के एक पेड पर तोप चढाई गयी। वही से गोला दागा। बारादरी जमीन पर सई किनारे आ गिरी। रामगुलाम सिंह अपने कलारास घोडे पर पीछे की ओर मुह करके बठे। लगाम की रस्सी कमर मे बाँधी। पीछा करने वाले कई अंग्रेजो को अपनी दुनाली बदूक का निशाना बनाया। दुश्मनो को बिना पीठ दिखाये वीरता के साथ नेपाल की ओर गए तो फिर लौटे ही नही। बचे हुए अंग्रेज कालाकाकर की ओर शरण पाने चले गए।

सई को ये सारी घटनाएँ पता हैं।

क्या फायदा अतीत दुहराने से। इस लजीली नदी मे अतीत सोया है। और वतमान ? वह तो कभी सोता ही नहीं है। सई के किनारे वाले जगलो मे शेर-चीते तो नही पाये जाते पर चित्र विचित्र पक्षियो का मेला लगा रहता है। सभी पक्षियो का राजा है मोर। बरसात मे फैली हुई हरीतिमा पर नृत्यरत मोरो की छवियाँ सई के तटो को चित्रशाला बना देती हैं। बादलो की घुमडन के सम पर नाचते मोर अपनी सुरीली बोली से अधरता[1] का सन्नाटा तोड देते है। जब कभी छठे छमासे आधुनिक मनुष्य वहाँ पहुँचता होगा, उसके मन पर उलटा प्रभाव पडता होगा। यह प्रकृति की मजूषा है। यहा धूमायित वातावरण नही है। सई अपने एअर कण्डीशनर को किसी गज फुट मापित कक्ष तक सीमित नही रखती। जल के प्रभाव को हवा जहाँ तक ले जाना चाहे ले जाए। कोई रोकटोक नही है।

यदि आप पहली बार सई से मिल रहे हैं तो ध्यान दीजिएगा—ऊँचे ऊचे कगारों के बीच सिकुडी हुई तन्वगी सई बडी अदा के साथ कब कहाँ मुड जाएगी, कहना कठिन है। लगेगा कि बडी भोली है। दीनदुनिया का इसे पता ही नही है। इसके उथलेपन से मैंने कई बार धोखा खाया है। इसकी गहराई को कुशल तराक ही नाप सकता है। छोटी डोगियों और नावों के भार को वहन करती बहती जाती है। कोई अपने भार से डूब जाय तो डूबे पर सई सभी को बहाती है, तैराती है पानी मे।

---

1 आधी रात

सई के रास्त मे रोडे नही हैं ।

बालू पर बहना इसके लिए कितना आसान है । मटियार मे कुछ कठिनाई हो सकती है । शिलाओ और चट्टानो की यात्रा सई की नही है । अपने गन्तव्य को यह आसानी से अपने अनुकूल बना लेती है । कभी कभी तो अपनी छोटी बहना के सहयोग से पूरे इलाके को घेर लेती है ।

सई के परिभ्रमण की मुद्राओ म लोच है ।

वह चलते समय बहुत गहरी और ऊँची नीची घाटियाँ नही बनाती । एक महात्मा ने एक बार प्रण किया कि पैदल चलकर सई की लम्बाई को नाप डालेंगे । चलते-चलत एक घुमाव पर उन्हें अदभुत दृश्य दीखा । ब्राह्मी अपनी सजीवनी मुद्रा म हरियाली लिख रही थी ।

महात्मा ने सोचा, 'यह हिमालय नही है । अवध का दक्खिनी छोर है । भूमि पथरीली नही है । यहा ब्राह्मी का पाया जाना अचरजमूलक है ।' निश्चय ही सई सजीवनी का दूसरा नाम है । उ ही महात्मा से मैंने भी जाना कि सई की गोद मे सजीवनी है । कई बार वहाँ जाकर लाया था ब्राह्मी ।

अवध के दो नगर रायबरेली और प्रतापगढ सई के किनारे बसे हैं । प्रतापगढ के बीच स बहती हुई सई ने जिले को दो भागो मे बाट दिया है । पश्चिम से पूव की ओर सपवत रेंग गयी है ।

सीपी कटुआ, घोघा, शवाल की तो खान है सई ।

इसकी चमकीली रेत म एक अजीब आकषण है । दोनो किनारों पर यह रेत कही कही प्रभूत मात्रा म पायी जाती है । सई की मछलिया बडी खूबसूरत होती हैं । झीका और चेल्हवा की नो फौज ही चलती है कतार बाध कर । ताल और लय पर होती है इनकी जलयात्रा । जाडे और गर्मी म नहाते समय अपने खाद्य के लोभ म ये काट भी जाती हैं । इनकी उछाल बडी तीव्र है । मछुआरो के जाल और डोगो से छुटकारा पाने के लिए इनके न हे-न हे प्राणो की त्वरा अपने सगी जल से मिला देती है । फिर वही जलक्रीडा पुन शुरू हो जाती है जिसके बिना य जीवित ही नही रह सकती । उथले पानी में तरती हुई मछलियो की चमकदार टुकडियाँ सई की शोभा है । जहा गहरे दह है, वहा पहिना[1] और सउर[2] भी हैं । ये अपने बडप्पन के कारण उथले पानी मे नही आते । पेट प्रधान करतबी प्राणी इनकी भी जान ले लेता है । सुदर रग रूप वाली मछलिया बुभुक्षिता का आहार बन जाती हैं ।

परोपकार दा प्रकार का होता है । एक तो सोच विचार कर किया जाता है, दूसरा अनजान ही हा जाता ह । मछलियो द्वारा किया गया परोपकार अतुलनीय

1 2 एक प्रकार की मछली

है। उन्होने भूखो से कभी कोई प्रतिदान नही चाहा।

सई के किनारे मन्दिर तो कई हैं पर बेल्हा देवी और घुश्मेश्वर महादेव के मन्दिर ज्यादा प्रसिद्ध हैं। बेल्हा नाम तो प्रतापगढ के साथ बुजुर्ग अभी भी जोडते हैं। सई का मन होता है तो मदिर की सीढियो को चूमती हुई बहने लगती है। एक बार तो देवी की मूर्ति भी डूबने को हो आयी थी। लोग कहते हैं, अपने भक्तो का देवी बडा ध्यान रखती हैं। रखती होगी।

घुश्मेश्वर के नाम को लोक जिह्वा 'घुइसन्नाथ' के रूप मे उच्चरित करती है। बडी वाचाल है दुनिया। इसका मौन भी कम नहीं है। जानकारो का कहना है कि घुश्मेश्वर महादेव शिव के द्वादश लिगो मे एक हैं। कौन झंझट मे पडे कि असलियत क्या है। तुलसीदास के असली जन्म स्थान का पता लगाने वाले तुलसीदास के सम्बन्ध मे कम जानते हैं। महादेव तो महादेव। नाम मे क्या रखा है। पर जानकारो का एक वर्ग कहता है, नाम ही तो सब कुछ है।

महादेव का यह विशाल मदिर सई की गोद मे बना है। मगलवार को हर-हर बम बम का स्वर दूर से ही सुनाई पडता है। ऋतुओ के अनुसार घुइसन्नाथ के मेले मे चीजें बिकने आती हैं। सई की देखरेख मे महादेव और उनकी जयजयकार करने वाले भक्तो की लीला प्राचीन काल से चली आ रही है। इसके आदि का तो पता नही और अत खोजने मे समय कौन नष्ट करे। मेले मे छोटी बडी चीजें बिकने आती हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ भक्ति के व्याज से मेला देखने आती है। पुरुष तो उनसे चार कदम आगे हैं।

शिवरात्रि के दिन बडे पर्व का मेला सई के तट पर लगता है। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर भक्त जन नदी मे गोता लगाकर शिवलिंग पर मिट्टी के पात्र से जल चढाते हैं। यदि भीड भाड मे कोई गर्भगृह तक नही पहुँच पाता तो दूर से शीशी फेंक मारता है। लहूलुहान हो जाते हैं लोग। और भगवान अपने ही घर मे भक्तो की रखवाली नही कर पाता है। इस विज्ञानवादी जमाने मे भी धर्मान्धता को कुछ सूझता ही नही। और सई है कि मस्ती मे बहती जा रही है।

मनुष्य अपनी गदगी से प्रकृति को भी गदा करता है। रायबरेली की फैक्ट्रियो का गदा पानी सई को जहरीली कर देता है। चुलबुलाती मछलियो के लिए यह पानी आए दिन जानलेवा बनता रहता है। परिणाम निरखने वाली दुनिया यहाँ परिणाम नही देखती। स्वार्थ साधना का लक्ष्य अचूक होता है।

बेचारी मूक मछलियाँ गुहार नही मचाएँगी। मगर और घडियाल सई में उतने नहीं हैं। तेल के प्यासे लोग इनकी खोज मे रहते हैं। महँगा बिकता है। वैसे व्यक्ति महँगाई महँगाई चिल्लाएगा पर मुफ्त मे भी प्राप्त अपनी वस्तु को महँगी ही बेचेगा। स्वार्थी व्यक्ति परोपकार के उपदेश देकर अपने व्यक्तित्व की रक्षा करता है।

सई को मैंने कभी भी स्वार्थ की भट्ठी मे तपते नही देखा। अनदिन मे वह अपने को बाँटती चलती है। जीवन और मरण मे आदमी का साथ देती है। पशुओ का तो सई स और भी नजदीकी रिश्ता है। सई के तटवासियो के लिए यह भयकर नही है। इसकी सर्पिलता में भी सरलता है। इसके टेढ़ेपन मे ऋजुता है। बच्चा म सई का बडा नाम है। उन्हें थोडी भी छूट मिल जाने पर सई में जल विहार करने का अवसर मिल जाता है। एक बार नदी मे घुसे तो निकलने का नाम ही नही लेत। हो सका तो आँख बचाकर तट पर उगाए गए तरबूज और ककडी का भी स्वाद लेते हैं। पकडो, मारो की ललकार म ये छोटे छोटे प्राण हवा हो जाते हैं।

मैं सई से बहुत दूर हूँ।

कभी कभी उसकी याद आती है तो आकुल हो उठता है मन। नये युग के अनुरूप हमारे स्वप्न काम करते हैं। यात्रा के प्रिय सन्दर्भों को उन्होंने सहेज रखा है। अपना तो उन पर वश नही है। ये स्वप्न ऐसे कप्यूटर हैं जो चाहने वाले की मर्जी का कुछ भी नही दिखलाते। जो ये चाहते हैं, वही दिखलाते हैं। अब तो सई सपनों के कप्यूटर की थाती है। यह भी मेरे लिए रोमाच का विषय है।

# मेला रात-भर सोया ही नहीं

प्रयागराज एक्सप्रेस से इलाहाबाद स्टेशन पर उतर तो बडी चहल पहल थी। देशी विदेशी पयटको का जमघट लगा था। आना जाना जारी था। भाँति भाँति के लोग। सभी यात्रा की मस्ती मे हैं। स्पेशल गाडियो के आने-जाने की घोषणा हो रही है। कुछ यात्री अफरातफरी मे हैं। अपनी अपनी गठरी सहेजे रेलवे पुल पार कर रहे हैं। तमाम तो ऐसे हैं जो सेतुआ पिसान बाँधकर आए हैं। लकडी भी लादे हैं सिर पर, पता नही मेले मे क्या हो? मिले या न मिले। और यदि मिले भी तो बाबा के मोल।

देहात से आए यात्रियो मे श्रद्धा है। महाकुभ मे अवसर पर सगम मे स्नान करके स्वग जाने की तीव्र इच्छा है। शहरी लोगो मे श्रद्धा का उतना प्रभाव नही है। यद्यपि सघप की भट्ठी मे दोनो तपे हैं पर दोनो के स्वभाव का अलगाव साफ देखा जा सकता है। प्रमोद सिनहा अपनी सलानी मस्ती म कहते हैं कि बहुत जल्दी करने की जरूरत नही है। अब दिल्ली से आ गए तो आ गए। दुबारा जल्दी कुभ मेला देखने का अवसर नहीं मिलेगा। बात ठीक है। इस शताब्दी का यह अतिम महाकुभ है। पता नही फिर कौन कहाँ रहे।

स्टेशन की रेलमपेल को पीछे छोडकर आगे बढे। इलाहाबाद शहर को जैसे किसी ने सक्रियता की सुई लगा दी हो। इस नगर की गति बहुत तीव्र नही है। बहुत सुस्त भी नही है। पर इतना तो निश्चय है कि नगर दौड नहीं रहा है। हनुमान चाल भी नही चल रहा है। जनवासे वाली चाल भी नही इसकी। पर इसमे चाल अवश्य है। लय भी है इसमे। इस लय की भगिमा मे ही तो सारी बात है। यहाँ न तो कोई दौडन आता है और न बैठने आता है। स्टेशन से अल्लापुर की ओर जाते हुए साफ देख रहा हू। स्नानार्थी जा रहे हैं। मुसाफिर सगम की ओर उन्मुख हैं। बूढे और अधेड ज्यादा हैं। नवयुवको मे तमाशा देखने की प्रवत्ति है। बच्चो की तो दुनिया ही अलग है। छोटी छोटी दुनिया, बडे-बडे विश्व यहाँ सिमट आए हैं। एकमेक हो गया है सारा समाज। दिशाएँ आपस मे एक दूसरे से मिल रही हैं। जातियो का भेद खत्म हो गया है। वर्णों की एकरूपता मे मनुष्यता

उभर आयी है। यह संगम का दूसरा छोर है। गंगा और यमुना के साथ सरस्वती का मिलन तो प्रतीक जैसा है। यहाँ तो संगम के अनेक रूप उभर रहे हैं।

यात्रा में प्रमोद काफी जिम्मेदार होने का आभास देते हैं। यहाँ सारी सीमाएँ टूट जाती हैं। समय की पाबन्दी नहीं रहती। निर्भरता के चिह्न नहीं दीखते। अनन्त विस्तार और घुमक्कड़ी का आलम। पिंजड़े का पंछी न हो गेट से बाहर हो गया है। बीच में दो तीन घंटे का समय बिताकर अलोपी बाग की ओर से मेले की ओर चल रहे हैं। दारागंज वाला मुख्य मार्ग बाएँ छोड़ दिया है। लालबहादुर शास्त्री सेतु छूट गया है। हम किले की ओर बढ़ रहे हैं। इतिहास से पूछता हूँ तो पता चलता है कि संगम पर स्थित किला अकबर ने बनवाया था। उसी ने नगर का नाम प्रयाग से बदलकर इलाहाबाद रखा था। अतीत की अँधेरी गुफाओं में बड़ा मनोरंजन है। कभी कभी तो इनके अंदर का अँधेरा इतना गाढ़ा होता है कि कुछ सूझता ही नहीं। यदि कभी कोई विचार सूत्र हाथ लग जाता है तो उसका परिणाम चौंकाने वाला होता है।

पन्द्रह जनवरी 1989 को हम प्रयाग पहुँचे थे। जाड़ा अपने पूर्ण यौवन पर था। दिन में गर्म कपड़े नहीं भी पहनिए तो काम चल जाएगा पर प्रायः लोग पहने हैं। आखिर दिन ढलते ही जरूरत पड़ेगी। घोषणा हो रही है। कुछ बच्चे खो गये हैं। स्त्रियाँ और बूढ़े भी खोये हैं। एक के बाद एक दूसरी घोषणा है। खोए व्यक्ति के रंग का भी विवरण बताया जा रहा है। हमारे साथ चलता हुआ यात्री नहान की तारीखें बता रहा है।

"कल चौदह जनवरी थी, मकर संक्रान्ति का स्नान। वह तो चूक गया। पौष की पूर्णिमा इक्कीस को है और मुख्य स्नान तो मौनी अमावस्या का है जो छः फरवरी को होगा। आगे वसंत पंचमी, माघी पूर्णिमा और महा शिवरात्रि।" यह सारा कार्यक्रम कई महीने का है पर त्यागी और तपस्वी भक्त और विश्वासी अपनी अपनी हिम्मत की पोटली बाँधकर यहाँ आ गए हैं। जल्दी यह अवसर नहीं मिलेगा भविष्य में। भारत की भविष्य द्रष्टा जनता अपने वर्तमान को सफल बनाने आयी है। इसी वर्तमान पर उसके भविष्य की सारी इमारत थमी है।

जब कभी इनका भविष्य वर्तमान बनेगा तो निश्चय ही ये कहेंगे कि यह सब पूर्व जन्म की कमाई है। और है भी तो।

इस बार अमावस्या सोमवार को है।

विशेष महत्त्व होता है सोमवती अमावस्या का। कई संयोग एक में आ मिले हैं। गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती का संगम। प्रयाग तो तीर्थराज है ही। कई वर्षों के बाद आया है महाकुंभ। मुक्ति मिलेगी यहाँ आने और नहाने से। यही सोचकर लोग आए हैं और आते जा रहे हैं।

सरकार ने प्रबंध अच्छा किया है फिर भी यात्रियों को कठिनाई हो रही है।

इस कठिनाई के बावजूद लोगो मे एक औलियापन दीख रहा है। फाकामस्ती की झोंक मे मेला चहल पहल से भरा हुआ है। सभी दिशाओ से आए हैं यात्री। उनकी धार्मिकता की इमारत मे सेंध लगाने वाले भी आए हैं। राशन की सरकारी दुकानो पर राशन मिल रहा है। दूसरी दुकानें भी हैं जहाँ राशन मिल रहा है ऊँचे दामो मे।

आदि शकराचार्य मार्ग की दोनो ओर छोटी छोटा फुटपाथी दुकानें दीख रही हैं। इन पर खरीददार रुकते नही है। देखते चले जाते हैं। चीजें महँगी हैं। गाँठ मे पैस हैं नही उनके। क्या किया जाए, मजबूरी है। आला अफसर होते, बडे नेता होते या फिर दलाल होते तो पैसे की परवाह न करते। और फिर यहाँ आते ही क्यो?

पैसे की आँखें नही होती। ऐसा सोचना ही व्यर्थ है। पैसा तो समाज को बडी बारीकी से देखना चलता है। वह सोचता रहता है कि कौन सी ऐसी वस्तु है जिसे वह खरीद नहीं सकता? वास्तव मे पैसा गुरु है, बाकी सारे उसके चेले हैं। होंगे पर यहाँ तो चतुर्दिक छायी हुई मस्ती पर पसे का कोई प्रभाव नही दीखता।

यह दैवी सपद महामडल हैं। भारत सेवाश्रम सघ का शामियाना बडा है। थोडा आगे बढते हैं। रत्न, शख, रुद्राक्ष, चदन, जनेऊ रगीन रक्षा (सूत) कस्तूरी के साथ ऐसी ही अनेक वस्तुएँ फुटपाथ पर बिक रही हैं। बेचने वालो न लम्बी जटाएँ रखी हैं। हाथ मे कडे हैं। ससा भी साथ मे है। साधु रूप म दुकानदारी की जा रही है। इलाहाबादी अवधी से थोडा हटकर बोलत हैं। साफ पता चल जाता है कि यहाँ के स्थानीय दुकानदार नही हैं।

आगे दीखता है अन्तर्राष्ट्रीय गीता प्रचार शिविर। प्रवचन जारी है। भक्ता की भीड है। कल्पवासी भक्त दिन मे प्रवचन ही तो सुनते हैं। गाँवो से स्त्रियाँ आई हैं। वृद्धाएँ सजग हैं। उनकी झुर्रियो मे नयी रगत उभर आई है। युवतियाँ वाचाल हैं। हँसी मजाक मे समय कट रहा है। बच्चो की दुनिया मे भालू, बदर गुब्बारे, पिपिहरी, चश्मे, घडियाँ, मिठाई की साइकिल, हुक्के और ऊँट। पेट मे जाते ही ये जानवर आकार बदल देते हैं। सारा कमाल मिठाई बनाने वाले का है। ईश्वर ही कर्त्ता नही है आदमी उससे ज्यादा चतुर है।

मुझे कहीं असमर्थता नही दीख रही है।

न कोई गजट, न घोषणा, न डुग्गी न डका। इतना बडा जन सागर उमड आया है। किसी ने किसी को न्योता भी ता नही भेजा। अनाहूत चले आए हैं यात्री।

स्वर गूजा—"ओझा जी का बेतन आया है। वे जहाँ कहीं हो, आकर ले जाएँ। आए होंगे, मुझे तो पता नहीं। और इसी प्रकार की अनेक आवाजें मेले मे

गूँज रही हैं। अखाड़ों का सिलसिला शुरू होता है। कोई अ त ही नहीं। सभी का तो नाम गिनाना भी सभव नहीं है। व अखाड़े सम्मान साधुओ के हैं। दस नामी जूनागढ़ अखाड़ा, पचायती अखाड़ा, महानिर्वाणी निरजन अखाड़ा और अखाड़ा का सिलसिला चलता गया है। धूनियाँ रमी हैं। तम्बू गड़े हैं। बाघम्बर बिछा है। चिलम भरी जा रही हैं। चिलम का धुआँ छल्ले बनाता हुआ आसमान को धूमायित रेखाओ म घेर रहा है। इस दुनिया म प्रवेश निषेध है। यहाँ अनचाही हवा भी नहीं जा सकती। महाकुम्भ एक महामेला है। इस महामेले म अलग अलग मेले हैं। सभी दर्शनीय हैं। इस दृश्य दर्शन से मन नहीं भरता है। नागा साधुओ के अखाड़ो म जाड़े म सहन क लिए लकड़ी के कुदे धधकाए गए हैं। आसपास नागा साधु दिगम्बर रूप मे बैठे हैं। सामाजिक मर्यादा मे बद रहने वालो के लिए यह अदृश्य अजूबा है। उनके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता। उनकी वेश भूषा आकर्षक है। तन पर कपड़ा नहीं हैं। भभूती मल रखी है। भुजदण्ड गठील हैं। सिर पर जटाओ का व्यूह है। लटो के समूह काली पतली धाराओ जैसे नीचे की ओर बह चले हैं। लाल चिलमो के प्रभाव न आँखो को भी लाल कर दिया है। इन्हे खान पीने की चिन्ता नहीं है। रसद पानी जनता के भडार से आता है। किसानो और मजूरो की मेहनत पर कितन साधु नेता और अफसर पल रहे हैं, गिनती करना मुश्किल है। लाभ पाने वाले इस बात की चिंता नहीं करते हैं कि उन्ह लाभ पहुँचाने वाला कोई दूसरा है। नागा साधुओ के चेहरो पर निरीहता मिश्रित दप दीखता है। कभी इन्हें मोर्चे पर रण रोपने के लिए बनाया गया। अब तो ये झगड़ा इस बात पर ठानते हैं कि इन्हें सगम मे पहले नहाने से कोई न रोके। जन-बल पीछे रह जाता है। नागाशक्ति अपने दर्पीले स्वभाव के कारण अपना प्रथम स्थान बनाने मे ही अपनी शान समझती है।

शकराचाय ने जब अपने चार मठो की स्थापना की थी उसके बाद ही अखाड़ा की स्थापना भी की गयी थी। शस्त्रधारी नागा साधु सनिक के रूप म ही थे। वे विदेशी आक्रमणकारियो से लोहा लेते थे। किसी समय ये शस्त्रधारी नागा साधु सनिक देशी रजवाड़ो के गाढ़े समय मे काम आते थे। अभी भी इनके स्वभाव मे परम्परा के काफी अवशेष बचे हैं।

कहा न कि इस मेले की छोटी छोटी दुनिया के अलग-अलग रग है। ये रग इतने गाढ़ हैं कि इनके आरपार दशक को कुछ नहीं सूझता। और इस महादेश की धर्मांध जनता साधुओ (?) के थूक को अपने सिर चढाती है। सिर चढाती है अगला जन्म सुधारने क लिए। आज साधु समाज की कोई धारा राजनीति की ओर बहती दीखती है, कोई आत्मलीन है। किसी धारा म ध्यान, धारणा है और कोई निर्विघ्न अपनी पेटपूजा मे लीन है। महाकुम्भ के इस जनअरण्य में सब कुछ स्पष्ट दीख रहा है। देश की निरक्षर, गरीब और असहाय जनता के सम्ब ध मे

इन दिगम्बरों ने कभी कुछ नहीं सोचा।

कुंभ नगरी में इस धर्मक्षेत्र में भूख प्यास और लंगर की भी एक दुनिया है। यहाँ ऐसे अनेक लोग घूमते, भीख माँगते मिल जाएँगे जिनका सहारा भगवान है। भगवान जनता में बसते हैं। जनता ही इनका पेट भरती है। पेट की लीला भी अकथनीय है। यदि यह पेट नहीं होता तो सारी दौड़ धूप, सारा जीवन नाटक क्यों खेला जाता। यहाँ ऐसे भी दाता-धर्मात्मा मिल जाएँगे जो हजारों भूखों का भोजन कराते हैं। साथ में वस्त्र और दक्षिणा भी देते हैं। सामने से सफेद कपड़े का टुकड़ा और कुश की आसनी थाम साधु और कतिपय अपंग चले आ रहे हैं। पूछता हूँ—यह कपड़ा कहाँ मिल रहा है? थोड़ा और आगे भंडारा हो रहा है। भोजन के उपरांत यह कपड़ा और पाँच रुपये दक्षिणा के नाम पर दिये जा रहे हैं। यहाँ जात-पाँत नहीं पूछी जाती। गरीबी में भाईचारा होता है। दीनता *और समता कहीं एक ही धरातल पर दीखते हैं। जहाँ धन है, वैभव है वहाँ कलह है, पीड़ा है।*

आजकल तो भिखारियों में भी स्तर की बात सोची जाती है। उन्हें माँगने की सुविधा चाहिए। जहाँ भी मनुष्यों की रेलमपेल देखी, वहीं इनका जमावड़ा इकट्ठा हो गया। हाट-बाजार, मेला, बस के इंतजार में खड़ी जन पंक्ति, रेलवे स्टेशन और साथ में यह महाकुंभ भी। सदय हृदय कुछ न कुछ दे ही देते हैं।

कुंभ मेले की नींव समन्वय पर ही टिकी है। यहाँ सभी सम्प्रदाय के लोग हैं। यह अभेद का जन-समुद्र है। मनुष्य और मनुष्य के बीच का फासला कम होता दीखता है। ये यात्री जब पुनः अपने-अपने घरों को लौटेंगे, तो अलग-अलग वर्गों में बँट जाएँगे। एक होने में कठिनाई है। अलग होना आसान है। सारी नीतियाँ एक होने का संदेश अवश्य देती हैं पर एकता व्यवहार रूप में कम ही दीखती है।

अगले दिन दारागंज बाँध से किले की ओर जा रहा था। दक्षिण की परंपरित शैली में बना हुआ त्रिपुर सुंदरी का विशाल मंदिर सामने दीख पड़ा। प्रयाग प्रायः जाता रहता हूँ पर इस मंदिर को देखने का अवसर नहीं निकाल पाया। आज इसकी कलात्मकता मुझे अपनी ओर खींच रही है। जयशंकर त्रिपाठी और प्रमोद सिनहा साथ में हैं। काँची, कामाक्षी, शिवभवानी—यानी त्रिपुर सुंदरी शंकराचार्य की आराध्य देवी थी। बतलाते हैं यहाँ के कर्मचारी कि भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने इस मंदिर के बनने में सहयोग दिया था। इसकी स्थापना काँची के शंकराचार्य ने की थी। कार्तिकेय, विष्णु, दुर्गा, एकाम्बिका द्वार शक्ति। पत्थर पर खुदा है 'विमला आम्नाय शक्ति तुगभद्रातीर शारदाख्या'। चौंसठ योगिनियों के पीठासन हैं यहाँ। इन्हीं योगिनियों का मन्दिर नर्मदा के तट भेड़ाघाट में बना है। अनेक सीढ़ियाँ चढ़कर वहाँ पहुँचना होता

है। आतनायियो ने मूर्तिया को भग्न कर दिया है। शरीर के उभार क्षत विक्षत हैं। वह प्रसग दूसरा है। अपनी मूल बात पर लौटता हूँ।

सारे अवतारो के सन्दभ प्रस्तर खण्डो पर उतारे गए है। तिरुपति, बालाजी, नरसिह, वराह कूर्मावतार, मत्स्य, राम, बलराम, नटराज, सोमनाथ, विश्वनाथ, महाकाल, रामेश्वर, ओकार, वैद्यनाथ, ज्योतिलिंग, योगसहस्र लिगम, केदारेश्वर, त्रबक, भीम शकर, मल्लिकार्जुन, धिषणेश्वर और ऐसे ही अनेक पौराणिक सन्दर्भों वाले नाम।

अखिल भारतीय धम सघ पडाल मे नौटकी हो रही है। कडकड कडकड धम। नगाडे की आवाज ध्यान खीचती है। कानपुर की नौटकी का मजा इसमे कहाँ। गुलबकावली का किस्सा चल रहा है। चल रहा होगा। हम तो महाकुभ का महामेला देखा आए हैं। समपण साक्षी सेवा, टाट बाबा, तूमडी बाबा, और लगोटे वाले। यहा इन्ही का बोलबाला है। इनकी मुद्राओ मे आशीवाद है, और याचना है, मस्ती है और पस्ती भी कम नही है।

सामने से एक ठिगने कद का साधु गेरुआ वस्त्र पहने आ रहा है। वस्त्र कोई कुर्ता कमीज नही है, अचला है। पैरो तक लट रहा है। पैर मे जूता चप्पल या चटपटी कुछ भी नही है। बहुत लम्बे बालो की लटें उसके दोनो कधा पर रखी है। उन झूलती लटो को वह हाथ पर थामे है। मैंने समझा, ये लम्बे लम्बे बाल बेच रहा होगा। भूल थी मेरी। अनुमान गलत निकला। समीप आने पर पाया कि वे सारी लटें उसके अपने सिर के बालो की हैं। इतनी लम्बी हैं कि सँभलती ही नही। इतने लम्बे बाल किसी स्त्री या पुरुष के मैंने नही देखे। यही विशेषता है इस महामेले की। जो कही नही देखा वह यहाँ मिल जाएगा।

एक कमडलधारी के पास से गुजर गया।

गाता जा रहा है—

'तेरा खोज किया वन वन मे
तू आय बसा मारे मन मे'

ठीक ही तो कहता है यह सत। हम जिसे खोजने म भटकते फिरते हैं, वह हमारे पास है। हम उसे पहचानते ही नही है। भाग्य की उपलब्धियो की तलाश मे रात दिन एक करते हैं। कम के परिणामो को देखते ही नही। कस्तूरी कुडल मे बसती है पर बेचारे मृग को पता ही नही होता। उसके जीवन की भटकन का यही कारण है। पहचान की शक्ति सभी मे होती भी तो नही।

खेमराज कृष्णदास की दुकान के पास खडा था। मरे एक मित्र को 'क्षत्रियो का इतिहास' चाहिए था। खरीदकर लौटने लगा तो विस्मयकारी घटना घटी। एक युवा स्त्री सामने आकर खडी हो गयी। उसकी बडी बडी आँखा म कोई

चुम्बकीय तत्व झलक रहा था। आयु यही कोई तीस के आसपास। रग साँवला। कद काठी सुदशन। उसका पूरा व्यक्तित्व आकषण का पर्याय था। मैं कुछ बोला नहीं पर उसके हाव भाव से लगा कि जैसे कुछ पूछना चाहती है। इतने मे उसका प्रश्न हाजिर हो गया—"बाबू जी, कस्तूरी ले लीजिए।"

'नहीं लेना है।"

उसके कधे पर थैला झूल रहा था। बिक्री की वस्तुएँ झोले मे भरी थी। हाथ मे दो खूबसूरत कस्तूरी लिए थी। हथेली पर कस्तूरी रखकर मेरी ओर बढाते हुए बोली—"ले लीजिए बाबू जी, असली है।"

"जब लेना ही नहीं है तो असली-नकली की क्या बात है ?"

"याद रखिएगा बाबू जी ले लीजिए।"

जब तक मे तिबारा कहूँ कि नहीं लेना है, उसने तपाक स मेरा बायाँ हाथ अपने हाथ मे लेते हुए दूसरे हाथ मे कस्तूरी मेरे हाथ म थमा दी। मैंने सूघा। कोई विशेष बात तो नहीं लगी। पर कस्तूरी को छुआ तो अत्यन्त मुलायम लगी और सुगध भी उसमे बडी मादक थी।

पूछा मैंने—'क्या दाम लोगी ?"

'बाबू जी सस्ते मे दूगी। सिफ पचास रुपये लगेंगे। मोलतोल मैं नहा करती। जगल जगल भटकते हैं तब कहीं एक कस्तूरी पाते हैं। सस्ता सौदा है। ले लीजिए।"

मैं कस्तूरी को अपलक देखता रहा। बहुत उत्सुकता नहीं दिखायी। बेचने वाली महिला को आभास हो गया कि उसकी कस्तूरी बिकेगी नहीं।

उसने अपने हाथ से मेरी मुट्ठी बद करके दबा दी। मेरे कोट की बाह मे मुट्ठी को रगडते हुए कहा—"अब सूघ कर देखिए।' बाह सची तो महक थी उस स्थान पर। यह करिश्मा अप्रत्याशित था मेरे लिए। केवल पाँच रुपये मे कस्तूरी का सौदा पटा। मेरे साथ शास्त्री जी ने भी एक कस्तूरी खरीदी। युवती मुसकराती हुई चली गयी। उसकी चपलता, कस्तूरी बेचने का ढग, बातचीत का लहजा देखते बनता था। व्यक्तित्व मे बनावट नहीं थी। मैंने यह समझकर कस्तूरी नहीं खरीदी कि वह असली है। बेचने वाली महिला ने इतनी कला दिखायी कि पाँच रुपये देना ही मैंने मुनासिब समझा। वह मुस्कराती हुई चली गयी। आग कहीं बेचेगी अपनी कस्तूरी। प्रमोद सिनहा कहते हैं—"पाँच रुपये मे कहीं कस्तूरी मिलती है। ठीक तो कहते हैं पर मैं क्या करता उस समय। कस्तूरी चाहे असली हो या नकली, उसके मिलने का तरीका कभी भी नहीं भूलेगा। महाकुभ की कस्तूरी।

बहुत सजग होकर बह रही है गगा।

असख्य प्रणामो और नतशिर प्रार्थनाओ को स्वीकार करती हुई गतिशील है

पुण्य सलिला। बड़े बड़े पीपो से कई अस्थायी पुलो की रचना की गयी है। आने-जाने वालो की सख्या बहुत है। पीपे के पुलो की देख रेख रात दिन करनी पडती है। जल के तीव्र वेग से एक पुल के पीपे टेढे हो गए हैं। मरम्मत का काम जारी है। पीपे से पीपे जुड़े हुए हैं पर जल का उच्छल आवेग कहाँ मानता है। शक्ति और बुद्धि से पानी की शक्ति को वश मे किया जा रहा है। वल्लभाचाय नगर की ओर जाते हुए पीपो को खींच रहे श्रमिको को देखा था। जोर लगाते हुए काव्यात्मक पक्तियाँ दुहराते थे। पुल न० आठ पर आवाज आ रही थी—"अरे धढि गवा पीपा आई-आई। अरे मरि गवा पीपा आई-आई।"

एक बडे लोहिया पीपे को जूट के मोटे रस्से से खींचा जा रहा है। पानी के तेज बहाव से पीपा टेढा हो गया है। पुल धनुषाकार होता जा रहा है। मनुष्य की शक्ति डटी हुई है। निरथक वालो की टेक बनाकर जोर लगाया जा रहा है। केबिल डालते समय बिजली और टेलीफोन विभाग के श्रमकर भी यही करते हैं। जुबान और शरीर की शक्ति का बडा गहरा रिश्ता होता है। वाणी के टानिक से शरीर मे स्फूर्ति आती है। कभी-कभी ललकार गजब ढा देती है।

पण्टून पानी पर तर रहा है।

आदमी का करतबी दिमाग है। असमव को भी सभव कर दिखाता है। पानी की शक्ति को चुनौती देना बहुत आसान नही है। इस कुभनगरी मे सवत्र आदमी की शक्ति और बुद्धि दिखायी दे रही है। जसे महाकुभ वसे ही महाप्रबध। इतनी सतकता और देखरेख के बावजूद कोई न कोई कमी दीख जाती है। इतने बडे जनकान्तार को सँभालने मे अधिकारियो ने बहुत श्रम किया है।

सगम पर एक रात बिताना चाहता हूँ।

ठिठुरती ठड मे कैसे रहा जाएगा। कपडे और बिस्तर लाया नही। जो कपडा तन पर था उसके अतिरिक्त एक कम्बल था पास मे। और प्रमोद के पास भी बस इतना ही। एक परिचित इजीनियर साहब धार्मिक विचारधारा के थे। उन्होंने किसी मडलाधिकारी की ओर स कई तम्बू लगवाये थे। एक हम लोगों को मिल गया। स्थान गगापार झूँसी की ओर। गगा द्वारा बनाया गया बालुका प्रान्तर। वहीं से थोडी दूर पर देवरहा बाबा अपने कमाल से अध श्रद्धालुओ का मजमा लगाये थे। गहरे पानी मे बनी मचान, श्रद्धावनत भक्तो के शिरप्रदश को छूती आराध्य के पैर की अँगुलियाँ। और आग निस्तार ही निस्तार। बडे बडे हाकिम हुक्काम, नेता, मिनिस्टर आते हैं और कृपादष्टि पाकर कृताथ हो जाते हैं। यदि जिन्दगी के धुआँए आसमान पर सयोग से कही कोई तारा टिमटिमाया तो उसे कर्मों का फल न मानकर 'प्रभु की कृपा की सज्ञा दी गयी।

मैं रेती पर बने तम्बू की बात बतला रहा था। अन्दर-बाहर रेत ही रेत।

बैठ जाइए रेत पर। उठकर कपडे झाड दीजिए। पता ही नही चलेगा कि आप रेत पर बैठे थे। सूखी गीली रेत कोई दाग नही डालती और फिर गगा की रेत। प्रमोद और एक दो स्थानीय साथी लिट्टी की व्यवस्था मे लगे थे। भांटा, आलू, आटा, सतुई, चोखे का सामान, कपडा। पर इतने से काम नही बनने का। अभी तो रेत का फश नगा था। पुआल का इतजाम किया गया। बिजली का तार बढाकर रोशनी की व्यवस्था करवाई गयी। देश की राजधानी से सैकडो किलोमीटर दूर गगा की गोद मे बैठे हम इतिहास का चेहरा दखने की कोशिश करते हैं। स्मतियो और किताबो मे बच इतिहास मे एक नाम उभरता है प्रनिष्ठानपुर का। यही झूसी ही तो है प्रतिष्ठानपुर।

पुआल के देसी बिस्तर पर कोट और पैण्ट मे ही सो जाने का इरादा बना लिया गया है। लिट्टी प्रेम ने हम लोगो को काफी व्यस्त रखा। व्यस्तता प्रेम की विशेपता है। वह कभी चुप नही बैठना। सक्रियता की खाद से प्रेम पनपता रहता है।

यदि कोई व्यवधान न पडा तो रात भर मेला देखा जाएगा। सारी रात जागरण होगा। हम तो देखें यह मेला रात को करता क्या है? अठारह जनवरी की ठिठुरती, कँपती रात। सोडियम लाइट और साधारण बल्बो की रोशनी मे जगर मगर होता कुभनगर। तम्बू मे सघन पुआल बिछ जाने के बाद मैं थोडा निश्चिन्त हो गया। यद्यपि रात को लेटना नही था पर सोचता था कि यदि घूमते घूमते थक गया तो लेटना पडेगा।

अभी ज्यादा रात नही बीती थी।

मेले की रात के सौन्दय का मुख्य आधार थी बिजली। ओसीले आसमान को श्याम पट ने जैसे ढँक रखा हो। बिजली के फूलो से उस काले पर्दे की सुदरता पर नयी चमक पदा हो जाती थी। विरोध का सौन्दय मुझे बहुत भाता है। तम्बू की देखरेख का भार अतुल को सौंपकर हम लोग घूमने निकले। पास ही कपडे का मदिर था। कोने से आती हुई रोशनी की धारा कपडे के चुन्नटो की चमक बढाती थी। हमारे साथ मेला भी चल रहा था। रात मे हलचल थी। न कोई ठहराव न थकान। उस मन्दिर के अन्दर गभगृह मे किसी मूर्ति मे प्राणप्रतिष्ठा तो नही की गयी थी पर एक अकल्पनीय कल्पना का आधार बना यह मदिर अपना नुकीला सिर आसमान मे गडाये था।

दूसरी ओर हरे रामा हरे कृष्णा' वग के सन्यासी अपने प्रभु से लौ लगाने एक अव्यक्त राग मे मन्त मग्न थे। विदेशी भक्तो के सिरो पर चोटियो की सज्जा दसी ठाट मे लोगो को चौंकाती थी। सभी दशक जिज्ञासु बन विदेशियो की कृष्ण-लीला और अनेक नृत्य मुद्राएँ देख रहे थे। झांझ, मंजीरा और रामधुन म तल्लीन नर नारी अपने आराध्य मे एकमेक हो गए थे। 'हरे कृष्ण हरे राम' की सज्जा

बहुत कीमती है। पडाल को अनेक प्रकार से सजाया गया है। कृष्ण की लीलाएँ झाँकियो मे झाँक रही हैं। कार्यकर्ता और भक्त यद्यपि सादे लिबास मे हैं पर व सभी सम्पन्न लगते हैं। अधिकाश विदेशी हैं। इनके सामने रोटी की समस्या नही है। इन्हें शाति और प्रेम चाहिए। कृष्ण के चरित्र मे ये अपनी चाही हुई सारी बातें देखते है। देश-विदेश म इनकी शाखाएँ हैं। एक मिशनरी उत्साह है इनम।

उदासी सम्प्रदाय के पडाल मे कृष्ण नाटक हो रहा है। पूरा माघ मला कृष्णमय है। कल्पवास मे आए असख्य नर-नारी अपना समय बिता रहे हैं। भगवान की कथा नदी जसे बह रही है। भक्तो के अवगाहन की तन्मयता देखते बनती है। पुल नम्बर तीन के पास पहुँच कर हम ठिठक गए। रात के बारह बजे है। गगा की धारा रेतीले तट को काट रही है। हुकार और छपाक के स्वर उठते हैं। तट पर कई खाली तख्त पडे है। गुडी मुडी लगाए कई लोग यहाँ वहाँ खर्राटे ल रहे है। वर्दियाँ चौकसा मे इधर उधर घूम रही हैं। प्रमोद के साथ मैं एक खाली तख्त पर बैठ जाता हू। थोडी दूर पर एक आकृति लकडी के काले कुदे जैसी रखी है। उसके पास ही एक जागरूक कुत्ता मुलुर मुलुर देख रहा है। उसकी आँखें चमक रही हैं। पर वह जडाया हुआ है। धीमी रफ्तार की हवा सर्दी को और सद बना रही है। मेरी निगाह गगा की ओर है। पैण्टून की नौका स छितराता हुआ पानी बडे वेग से आगे बढ रहा है। थोडी थोडी हलचल है। पानी म उथल पुथल है। लहरो पर लहरें टूट रही हैं। बालुका तट कट रहा है धीरे धीरे। छोटे छोटे कगार छपाक से टूट कर गिर रहे है। बडे कगार यहाँ हैं ही नही। इस बालुका प्रान्तर का निर्माण गगा न स्वय किया है। नदी मे रचना का भाव हाता है। रचना के मूल मे कहीं न कहीं विनाश छिपा होता है। इसी विनाश की छाती पर निर्माण पुन सज्जित हो उठता है। इतिहास की जुबानी मैं बोल रहा हूँ।

उस आकृति मे सुगबुगाहट नही है।

शका होती है। पास जाकर देखता हूँ कि एक व्यक्ति फटे कम्बल मे लिपटा पडा है। सो रहा होगा। मैंने जगाया नही। दसेक गज के फासले पर लकडी का कुदा धधक रहा है। आसपास चार पाँच लोग सो रहे हैं। बन्दर नचाने वाला भी। बन्दर के गले मे पडी रस्सी उसने अपनी कमर मे बाँध रखी है। रस्सी ढीली होने के कारण उसका बन्दर भी सो गया है। आजीविका का साधन बहुत प्रिय होता है। बडी मजगता स उसकी देखभाल करनी पडती है। एक बार यदि चूक हो गई तो सारी जिन्दगी व्यक्ति दुख का भार ढोता रहेगा।

इस समय चारा ओर सन्नाटा होना चाहिए।

यद्यपि शोर कम है पर रह रहकर आवाजें आती है। टूटती हुई ये आवाजें

गगाजल में डूबती जाती हैं। अब हर हर बम बम नही सुनाई पडता। जन सकुल मेले म ऐसा एकात और शात वातावरण दिन मे दुलभ है।

रातभर जगेगा मेला। सारी रात जगेंगी दुकानें। चालीस रुपये किलो की रवडी खाकर न तो पेट भरा और न मन। लिट्टी तो सबेरे मिलेगी। हलवाइयो पर भरोसा होता नही। अपने व्यापार के लिए वे कुछ भी खिला सकते हैं। यह भूख बीच मे कहाँ से आ गई। यात्रा और भूख मे होगा कोई नाता। तट से लौटते हुए देखा था गूदड का एक ढेर। आतक के कारण पुलिस सतक है। भय के वातावरण मे सत्य को असत्य बनते देर नही लगती। वैसे ही असत्य भी कभी कभी सचाई बनकर सामने आ जाता है।

तीन पहियो पर दौडते हुए ट्रैक्टर को देखकर अचरज हुआ। जब तक कैमरा सँभालते, वह दूर चला गया। इस प्रकार के अदभुत दश्य मेले मे कही न कही दीख जाते थे। घूमने मे सर्दी उतनी नही लगती थी। रात म गगाजल गम हो गया था। सबेरे तो पानी से भाप ही निकलने लगेगी। उत्तर की ओर शास्त्री पुल के पार भी मेला चला गया था। पूरा तो घूमा भी नही जा सकता है।

कुम्भ मेले मे किसिम किसिम के लोग मिल जाएँगे। अधिकाश यात्रियो मे धार्मिक भावना है। मनोरजनाथ आए यात्रियों की सख्या भी कम नही है। धनाढ्य आए हैं। निधन और असहाय भी हैं यहाँ। भीख माँगने वाले भी कम नही हैं। मले का प्रबध सभालत सरकारी असरकारी कमचारी अपनी प्रतिबद्धता का परिचय दे रहे हैं। शोषक और शोषित दोनो है यहा। अपना सब कुछ गँवा कर यहाँ भगवान की शरण म आए व्यक्तियो की सख्या कम नही है। राजनेताओ के आन से प्रबध डगमगा जाता है। सुना है कि वे आम व्यक्ति के वेश मे रात के धुधलके मे आए और डुबकी लगाकर वापस लौट गए। इस विश्वासी भारत भूमि के बेटो और बेटियो का मन मानता नही है। तक की गाडी पर भागते हुए भी विश्वास के गतिरोध का ध्यान रखती है जनचेतना।

ढाई बजे रात। तम्बू मे टिमटिमाते बल्ब की पीली राशनी चटख हो गई है। आसानी स पन्ना लिखा जा सकता है। पर अब सोना है अन्यथा सबेरे नीद नही खुलेगी। प्रात चार बजे से ही नहान शुरू हा जाता है। नीद बुलाने पर तो शायद ही कभी आती हो। बालू के गद्दे पर पुआल का बिछौना। धरती के नाम की साथकता यही तो दिखाई पड रही है। नीद आने पर भी एक कोई अवचेतन जाग रहा है। भाँति भाँति की आवाजें सुनता है। केवल डेढ घटे की तो बात थी। इसके बाद सबरा हो जाएगा। हम लोग सोय जरूर पर मेला तो रात भर जागता रहा। आवाजा के घेरे बनते टूटते रहे। गगा गवाह है इस सारे क्रियाकलाप की। वह युगो से देती आई है गवाही। आगे भी देती जाएगी।

पानी के मुख्य पाइप का मुँह खुल गया था। तेज धार की आवाज स नीद

टूट गई थी प्रात । कितना भी पानी हो, गगा की रेत आत्मसात कर लेती है। उठकर देखा तो सबेरा हो गया था । भजन कीर्तन की ध्वनियाँ तैरने लगी थी। दुकानो की चहल पहल बढने लगी थी। अन्तर्राष्ट्रीय कष्ण भावनामत सघ सकीर्तन मे सलग्न हो गया है । शायद कीर्तन ही इसका परम लक्ष्य है। अच्युत केशव रामनारायण कृष्ण दामोदर वासुदेव भजे और ओ३म् भूभुव स्व जैसी ध्वनियो से भर गया था सारा वातावरण ।

एक टी स्टाल पर अँगीठी का धुआ दीखा । कुल्हड मे चाय मिल रही थी। देसी शैली मे सोधी चाय मिली तो लगा कि जैसे पूरे दिन की साथकता सिमट आई हो । एक सवहारा साधु ने कहा—"आपसे चाय पीना चाहता हूँ ।" "हाँ-हाँ, पीजिए न"—उत्तर सुनकर उनके चेहरे का तनाव कम हुआ । अब तो अपने देश और विदेश मे सघुक्कडी एक पेशा बन चुकी है। अभी भी अभाव की भट्टी मे तपते हुए साधनहीन रहकर भी कुछ साधुजन अपनी अस्मिता बनाए हुए हैं। मुझे तो पता नही पर चायवाला कहता है कि ऐसे ही लोगो के सहारे धरती टिकी हुई है । होगी। चाय पीते हुए महात्मा जी प्रयाग का इतिहास ही बतलाने लगे।

शकर विमान मडपम, अशोक स्तभ, किला, सरस्वती कूप, आनदभवन, भरद्वाज आश्रम और हनुमान मदिर जैसे अनेक नाम । इन नामो के साथ विश्व-प्रसिद्ध राजनेताओ के नाम भी प्रयाग से जुडे हैं। नाग वासुकि के मदिर की सीढियो पर कभी स्वामी दयानद सरस्वती बैठे थे। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती एव डॉ० जगदीश गुप्त के सौजन्य स वहाँ एक प्रस्तर पट्टिका पर लिखा है—"इस प्राचीन मदिर के सापानो पर कौपीनधारी महर्षि दयानद सरस्वती ने माघ सुदी 5 स० 1926 वि० (5 फरवरी, 1870) ई० कुभ मेले पर घोर शीत की कतिपय रातें काटी।

महाकुभ का मेला सदियो से लगता आया है । ऐसे मेले समय की यात्रा के पडाव जसे हैं। आदमी और आदमी के बीच पनपे प्रेम के प्रतीक हैं ये मले। बीते समय की बात गगा से पूछता हूँ। वह बिना कुछ बतलाए लहरीली चाल मे चली जा रही है । बहुत जल्दी है उसे।

भोर न रोशनी बाटने की तयारी कर ली है । आदमी चौकन्ना हो गया है। इस महानदी के किनारे आलस्य ता कही दीखता ही नही। सजगता की ध्वजाएँ उड रही हैं। नाम और यश के लोभी जीव अपन करतब दिखा रहे हैं। जो आँखें इस मेले को आज देख रही हैं व अगले महाकुभ तक पता नहा कहाँ हागी। असख्य आँखों मे स्मृति की धरोहर बनकर महाकुभ सदैव बना रहेगा।

बाँस भर दिन चढ आया।

चला चली की जल्दी म भी इस अपार जन ससार को भूलना कठिन था। यादें ही तो जीवन की चिरसगिनी हाती हैं।

# पहियो पर घूमते नगर

यहाँ के राजमाग रात मे भी विश्राम नही करते। यह नही पता चलता कि ये कब अपना सफर प्रारम्भ करते हैं और कब उसका अत होता है। चलते रहने की यह कहानी यात्रा की कितनी लम्बाई छोडकर आई है और आगे कहाँ तक फैल जाएगी, कुछ नही कहा जा सकता। अनुमान लगाना भी कठिन है। अपनी छाती पर ट्रक, बसें, ठेलिया, रिक्शा, स्कूटर ढोती ये सडकें कभी उफ नहीं करती और आदमी है, कि इन्हें रौंदता जाता है। कभी मुड कर देखता भी नही कि छाती छलनी हो गई या बची है।

चारो ओर से आवाजाही निरतर लगी रहती है। भारत जैसे महादेश के विभिन्न प्रान्तो से आने वाली बसें वहाँ की सस्कृति एव सभ्यता के प्रमाण पत्रो को यहाँ उतार देती हैं और लौटानी ऐसा ही बहुत कुछ वापस ले जाती हैं। यह सिलसिला अब कुदरती लगने लगा है। जैसे रोज रोज सुबह शाम होती है, सूय उदयाचल से झाँकता है, ठीक वैसे ही। मनुष्य ने अपना तालमेल प्रकृति के साथ बैठा लिया है।

दिल्ली जैसे महानगर मे अन्तर्राज्यीय बस अडडा महत्त्वपूण स्थान है। इसके एक ओर है प्रसिद्ध कश्मीरी दरवाजा जहाँ बहुत पुरानी दीवाल मुगल-कालीन इतिहास की गवाह है। दीवाल के किनारे किनारे भाँति भाँति की दुकानें सजती हैं जनता की सुविधा के लिए पर यदि आप भाव से परिचित नही हैं तो वहाँ मुडवाते देर नही लगेगी। लाभ कमाने की कोई सीमा भी होती है क्या ? दूसरी ओर है मोरीगेट का बस टर्मिनल जहाँ से तीस हजारी कचहरी की ऊची इमारत दीखती है। न्याय अगर सच्चा हो तो उसकी इमारत छोटी होकर भी ऊँची ही होती है। कभी शहजादी जहाँआरा बेगम ने तीस हजार वृक्षो वाला बाग लगवाया था यहाँ, जो तीसहजारी बाग कहा जाता था। यही कही 'सावन-भादो' नाम की दो इमारतें बनवाई गई थी। नहर के पानी से बनी जलचादर के गिरने से सचमुच सावन भादो उमडता रहा होगा। प्रथम स्वतत्रता सग्राम के बाद तीस हजारी बाग के पेड अग्रेजो ने कटवा दिए और वहाँ उग आए अनेक

सरकारी कार्यालय जिनके नीचे गायब बाग में आँसुओं को धरती सोख चुकी है। केवल स्मृतियां बची हैं।

तीसरी ओर कुदेसिया बाग है। बागों पर अब पार्कों का कब्जा हो गया है। घूमने फिरने की अच्छी जगह है। सलानियों और प्रेमी युगलों से भरा रहता है यह पार्क। घूरते हुए मालियों की दृष्टि बचाकर कुंजों में विहरते हुए लोग शाम के झुटपुटे तक देखे जा सकते हैं। इतिहास की निममता ने नक्शा ही बदल दिया है। दिल्ली के बादशाह *अहमदशाह की माँ थी कुदेसिया बेगम। नगर की गाने* बजाने वाली एक प्रसिद्ध महिला। अपने युग में उसके बड़े रंग थे। बेटा बादशाह *था ही। सया भये कोतवाल अब डर काहे का।* उसी कुदेसिया बेगम का लगवाया बाग था जहाँ अब उसके नाम का पार्क है। अतीत की यादें रूमानी चित्र बनाती रहती हैं। इस पार्क के किनारे से गुजरने वाले राजमार्ग की व्यस्तता चतुर चितेरे भी उरेह सकेंगे मुझे सन्देह है।

और चौथी ओर है 'रिंग रोड' नाम की मुख्य सड़क जो थोड़ी देर तक यमुना की संगिनी बनी रहती है। नदी और सड़क की प्रकृति अधिक समय तक उन्हें साथ नहीं रहने देती। इसी चौहद्दी के बीच दिल्ली विकास प्राधिकरण का बनवाया हुआ विशाल *बस अड्डा है जहाँ दूर दूर के शहरों से, गांवों से प्रतिदिन* यात्रियों का हुजूम आता है और राजधानी की चकाचौंध निहारता हुआ चला *भी जाता है। आने वालों के चेहरों पर भाँति भाँति के भावों को पढ़ना बहुत* आसान है। पंजाब से, उत्तर प्रदेश से हरियाने से राजस्थान से आने वाले यात्रियों में *जिज्ञासा, परेशानी, थकान, उल्लास और त्वरा की लय परखी जा सकती है।* अनेक चेहरे ऐसे हैं जिनमें झांकते हुए कौतूहल के गुलाब हठात अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वायुओं का झुंड अपनी चुस्ती में गन्तव्य की ओर जाता दीखता है। अपनी गठरी के प्रति सदैव सचेत रहने वाला ग्रामीण एक अचम्भे की दुनिया में अपने को पाता है। यहाँ उसे न तो कोई घंटा ध्वनि सुनाई पड़ती है और न हर-हर बम बम का रेला दिखाई पड़ता है। यहाँ टर्मिनल की बड़ी इमारत में दीखते हैं आदमी और भाँति भाँति के आदमी।

सण्ट्रल हाल में गोल खम्भों से मिली हुई सीमेण्ट की कुर्सियां बनाई गई हैं। सफाई सतर्कता के बावजूद भी गन्दगी के ढेर देखने के लिए मिल जाएँगे। गन्दगी करने वालों की संख्या लाखों में है। सफाई कर्मचारी उँगली पर गिन जा सकते हैं। इसी गन्दगी से बसियात गमले हैं जिनमें कलियाँ फूल बनने के लिए उमगती हैं पर बीड़ी सिगरेट के धुएँ और थूक से नहाने के बाद उनकी हिम्मत ही नहीं पड़ती। थोड़ा रुक कर देख लीजिए। खूबसूरत फूल के गमले को यात्रियों ने कूड़ादान समझकर सिगरेट की पन्नी, माचिस की तीली, डबलरोटी का कवर और कागज के थैलों से भर दिया है। दूसरी ओर का दृश्य और भी अनाथा

है। गमले को पीकदान समझकर उसका उपयोग किया गया है। स्वतन्त्रता की बुनियाद के ऊपर स्वच्छन्दता ने अपने पैर जमा लिए हैं।

दिल्ली टूरिज्म काउण्टर के पास खड़े होने पर जनरल स्टोर, पत्रिकाओं की दुकानें, अपनी पेटी सँभाले बूट पालिश वाले दीख जाएँगे। पत्रिकाओं की दूकानों पर सरस सामग्री का बाहुल्य है। प्लास्टिक पारदर्शी कवर में लिपटी नारी काया की अनेक आकृतियाँ, कोकशास्त्र के आवरण टाइटिल एवं 'केवल वयस्कों के लिए' तमाम साहित्य यहाँ मिल जाएगा। या फिर लैला मजनूं, हीर राँझा, गुलबकावली, बैताल पचीसी और ननदी भौजैया भी कहीं न कहीं दीख जाएँगी। कवर डिजाइनों को घूरने वाले ग्राहक ज्यादा आते हैं। भोंडी नारी आकृतियों को बेच बेच कर पेट भरा जा रहा है। यह सिलसिला बहुत लम्बा है।

बसें एक के बाद अन्य घुरघुराती आती जाती हैं। खरखोदा, पानीपत, करनाल, चंडीगढ़, शिमला, हिसार, फिरोजपुर और संगरूर अपने अपने परिवेश में लिपटा चला आता है। और दूसरी ओर से अलीगढ़, बुलंदशहर, देहरादून, मुरादाबाद, मथुरा एवं आगरा से आने वाली छवियों को निहारा जा सकता है। राजस्थान की मरुभूमि की ओर से आने वाली हरी हरी बसों में छायी चली आती है वह संस्कृति जिस पर एक ओर तो राजन्य प्रभाव दीखता है और दूसरी ओर रोटी की लड़ाई की तत्परता झलक मारती है। 'हरियाने की शेरनी' आयी तो उसके पास अच्छी-खासी भीड़ ही इकट्ठी हो गयी। उतरती हुई दीखतीं हैं रंग बिरंगी नर्तकियाँ। लोकनृत्य के किसी कार्यक्रम में राजधानी आयी हैं। पीछे की ओर गोल-मटोल खंभों से लगे हुए जो पाइप जड़े हैं, ये कुर्सियों के पाइप हैं। इनकी तख्तियाँ पता नहीं कब यहाँ से गायब हो गयी हैं, दिन दहाड़े हजारों आँखों के सामने। धुआँते वातावरण में सना लिपटा जलपान घर अभी भी धुआँ ही उगलता है और दूर दूर से आने वाले भूखे प्यासे यात्री उसी से काम चलाते हैं। यहाँ की सफाई में भी स्वच्छता नहीं है। ईमानदारी में ईमान खोजने की कोशिश करना बेकार है। दिल्ली अभिलेखागार, पुरातत्व विभाग के साइनबोर्ड के नीचे शीतल पेयों के विज्ञापन हैं। पीने का पानी और शौचालय अगर साथ साथ मिल जायं तो अचरज की बात नहीं है।

'उत्तर प्रदेश परिवहन निगम आपका स्वागत करता है'। देश की राजधानी में स्वागत करता है पर अपने प्रदेश में उसकी दशा तोबा। कोई टाइम टेबल नहीं, सही सड़कें नहीं, बसें खस्ता हालत में, स्टेशन कूड़े के ढेर हैं—यानी कि यू०पी० रोडवेज को भगवान ही चला रहे हैं। पर दिल्ली आने वाली बसों के चेहरे कुछ अलग हैं। गठरी, संदूकची और बिस्तर का छोटा गट्ठर सँभालती बुढ़िया सिर पर हाथ धरे रुआँसी-सी बिसूर रही है। बच्चों के लिए टाफी खरीदने के लिए पुटकी खोली। कोई उचक्का मटमैले रूमाल में बँधा पैसा ही ले भागा। सिपाही

उसे सात्वना दे रहा है। कहता है, "भाई जी, अगर घर जाने के पैसे न हों तो मुझसे ले लीजिए।" कहाँ तक किस किस को देगा वह पैसे। यह कार्यक्रम तो रोज का है।

तिपहिया स्कूटर और टैक्सियाँ अपने-अपने शिकार की खोज मे रहती हैं। कोई नया यात्री फँस भर जाए। टेढ़े-टेढ़े रास्ते ले जाकर अपना उल्लू सीधा कर लेना उनके बायें हाथ का खेल है। ट्रैफिक पुलिस की मुस्तदी के बावजूद भी यह सब होता रहता है। बस अड्डा इसका केन्द्र है। अगर सारा समाज बईमानी करने पर तुल जाय तो निगरानी रखने वाले मुट्ठी भर लोग उसका क्या कर सकेंगे। वह व्यक्ति जा घोर देहात से पहली बार दिल्ली आया है, बस अड्डा उसके लिए भूलभुलैया है। वाहनों की रफ्तार देखकर ही भौचक्का रह जाएगा। सभव है सडक पार करने में उमे दिक्कत हो। इस जन जगल की दौडधूप दखकर सभव है वह लौटती बस स वापस चला जाए। यात्रियो के चेहरो की भाषा पढना आसान नही। जिसे आप भोला भाला समझ रहे हैं, सभव है कि उसके गदे थैले म अफीम की पोटली रखी हा कोई गैर-कानूनी सामान हो। चुनौटी मे, टाच के खोल मे, पेट्रोमक्स के पेंदे मे, टिफिन बाक्स मे—कहाँ तक खोजेगी पुलिस।

यही बूट पालिश वाला की टोली बैठती है। ठक, ठक्, ठक, ठक्—यह क्या? चौंकने की आवश्यकता नही है। आपके जूते गन्दे हैं। पालिश करवाने के लिए इशारा किया जा रहा है। रग करने के नाम पर दूने तिगुने पैसे ऐंठे जा सकते हैं। पास से कोई युवा महिला निकल गयी। इनके गुस्ताख फिकरे सुनिए। ये उस गाँव के मोची की तरह नही हैं जो दिन भर की मजूरी भी नही ले पाता और सतोप से पेट भर कर अपनी राँपा और सुतारी के साथ-साथ स्वय भी सो जाता है। इनकी तो शाम तक पौ बारह है। सेक्सी सिनेमा और ठर्रा दो ही तो शौक हैं। 'ऐसी पालिश करेंगे कि जूते म अपना मुह देख लीजिए। कतरनी की तरह जुबान चलती है। हाथ तो मशीन का भी कान काटते हैं।

सीढियो पर चढते हुए मोरी गेट की ओर बढते जाइए। एक टूटी खाट के चारो पायो मे झडा लहरा रहा है। गूदड के ढेर के ढेर चारपाई पर बेतरतीब रखे हैं। अजीब तरह की गध आ रही है। बीडी के धुएँ से धुआँई दाढी को सँभालता बूढा गूदड को कभी समेटता है, कभी अलग करता है। बडबडाता है कि 'मैं हिन्दुस्तान हूँ।' होगा। यदि कोई पास खडा होकर उसे दखता है तो उसके चेहरे पर उतरता है एक तीखापन जिसे सहन करना मुश्किल हो जाता है। छ रुपय किलो, सात रुपये किलो की आवाजें सेब बेच रही हैं। इनके पास से तीन चार का जो समूह बिना उधर देखे आगे बढ गया, उसके लिए सेब फल नही, दवा है। बिना बीमार हुए वह क्यो खाएगा।

हाल के दक्खिनी छोर पर हैं अनेक भोजनालय और जलपान-गृह। हाथ मे रूमाल झुलाते लडके यात्रियो को स्वागत की भाषा मे बुलाते हैं—आइए साव। छोले भटूरे। खाना खाओ साहब ('खाइए' या 'लीजिए' जैसी क्रिया के उच्चारण इन्हें नही आते) गरमागरम पकौडियाँ और भी जाने क्या क्या। सुनने वो अभी मोहित हो जाए। इन खाद्य पदार्थों का दाम लेते समय अभिवादन की मुद्रा गायब हो जाती है। वहाँ कोई रू रियायत नहीं। चोखा काम, खरे खरे दाम। खाना खाने के बाद यात्री मन ही मन कसम खाता है। दुबारा मिठास मे डूबे हुए बहकावे मे कभी नही आएगा। सभव है वह अपनी जगमगाती राजधानी मे पहली और अतिम बार आया हो। क्या फर्क पडता है। चार रुपये प्लेट का रायता और छ रुपये का आमलेट खाकर वह बहुत पछताया है। गाँठ मे पैसा हो तो सब अच्छा लगता है।

बुकिंग काउण्टर, आने जाने वाली बसें, काय मे तत्पर चालक और सचालक, चेहरो का मेला, रोजी रोटी की चिता मे डूबे हुए लागो को दखते हुए यात्री महानगर की काया मे प्रवेश करने के लिए बाहर आता है। रिक्शा, ताँगा, तिपहिया स्कूटर, फोरसीटर, टैक्सी, मिनी बस एव दिल्ली परिवहन निगम की बसें यात्रियो को ले जाने के लिए तत्पर दीखेंगी। तिपहिया स्कूटर से होशियार रहना पडता है। वहाँ से कश्मीरी गेट की दूरी एक किलोमीटर भी नहीं है। क्या पता!! घुमा कर अजनबी यात्री को ले जाए और दस पन्द्रह रुपये मुफ्त म वसूल ले। सबेरे जब बस अड्डे की ऊँची इमारत दीखे तो यात्री को असलियत का पता चले। सामान्य जन इसीलिए लोकल बसो मे जाना पसन्द करते हैं। टैक्सियाँ बहुत महँगी हैं। यहाँ का विरोध भी अनोखा है। चीनी रेस्त्रा मे भारतीय भोजन मिलता है। बगाली स्वीट हाउस मे बगाल की असली शिनाख्त ही गायब है। ठडा पानी, मूली, खीरा और साथ मे मिट्टी से भरा ट्रक, मुह बिराते बतन, पत्ते पर चाट और चाट पर पडी धूल सभी कुछ मिल जाएगा, दीख जाएगा। लाटरी के टिकटार्थी करोडपति बनने की चाह मे मजमा लगाए हैं। जा गाँठ मे है उसे भी गँवा रहे हैं। जादू की अँगूठी भी खूब बिक रही है। मनचाही वस्तु उससे मिल जाती है। गण्डे-तावीज मे भी लोग मन रमाये हैं। यहाँ के फुटपाथो से प्राप्य प्रेम की खुशबू से सराबोर रूमालें हीर राँझा के सम्बन्धो को प्रगाढ़ बनाती हैं। यहाँ हमेशा चहल पहल बनी रहती है। कदाचित ही विश्राम कर पाता है यह बस अड्डा। आने वालो का स्वागत है और जाने वालो के लिए यह स्मृतियो का गुच्छा ही दे देता है। कितना करतबी है आदमी। उसकी कला के कितने तो रग हैं।

जसे यहाँ चारो दिशाओ से यात्री आते हैं वैसे ही लौटते भी हैं। इस बस अड्डे से चारो ओर जाने निकलने की सुविधा है। बसो के चार पहियो पर घूमने वाला

जीवन यहाँ निरंतर सक्रिय है। यह घर मेरा-तेरा और किसी का नहीं है। बस आते-जाते रहिए। इस पुख्ता इमारत पर आपके गमनागमन का कोई असर नहीं पड़ेगा। न तो यह हँसेगी और न रोएगी। निस्पृह सारे नाटक को निहारती जाएगी। नयी नयी वर्दियाँ आएँगी। कुर्सियाँ बदलेंगी और परिवर्तन की चाकी चलती रहेगी। ये पहिए भी घूमते रहेंगे और छोटे छोटे शहर और गाँव सैलानी बने सफर की मुद्रा में दिखायी देते रहेंगे। कितनी गतिमान है दुनिया, कितनी सक्रिय है यह धरती।

# पार्वती के कगन

भारतीय मनीषी ने कभी क्राति में देवता शकर की कल्पना की होगी। दिन और रात्रि की अनेक यात्राओ के बाद आज भी शंकर की ख्याति पर कोई आंच नही आई। उनके व्यक्तित्व के साथ अनेक बातें जुडी हुई है। क्रोध, विनोद, दया, क्षमा आदि के साक्षात अवतार हैं शकर। अपने महादेश के जिस भी कोने म जाइए, शकर की पूजा का कोई न कोई रूप मिलेगा। लिग-पूजा से लेकर चित्र पूजा तक उनका महत्व जन मानस ने स्वीकार किया है। कल्पित अतीत की पर्तों को हटाने पर पता चलता है कि शकर ने विष्णु के समान कभी अवतार नही लिया। अवतरित न होने पर भी वे आस्तिकता के क्षेत्र मे बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी व्याप्ति का आधार जीवन को सरस बना देता है, साथ ही सबल भी बनाता है। शिव पुराण में वर्णित उनके अवतार राम और कृष्ण जैसे नही हैं। कही-कहीं तो उन्हे अनार्यों का देवता भी माना गया है। पौराणिक आख्यानो मे भांति भांति की बातें हैं। जनना तो हमेशा सीधे रास्ते चलती है। सुगम माग ही उसे प्रिय है।

'शिवद्वार' नाम सुन कर मुझे कुछ अचभा हुआ था। इसलिए कि नगर की तामझाम से दूर वृक्षो के झुरमुट मे बसे सामान्य से गाँव का नाम अपनी सामान्य प्रकृति से हट कर लगा था। अभी भी ऐसे ही पुकारा जाता है। गाँव गिरांव के लोग भी 'शिवद्वार' नाम से ही उस स्थान को जानते हैं। उत्तर प्रदेश का मिर्जापुर जनपद प्राकृतिक सम्पदा की दृष्टि से बहुत धनी है। विन्ध्याचल की हरी भरी घाटियो में गगा, टौंस, बेलन और कर्णावती आदि नदियो के कारण चतुर्दिक हरियाली का सागर लहराता है। साथ मे चलता है प्रपाता का सिलसिला जो सारी दृश्यावली को धरती के फलक पर रच देता है। स्थिर पथ्वी पर जल की गतिमयता देखकर प्रकृति की कारीगरी का लोहा मानना पडता है। उसके सामने आदमी की बिसात बचकानी लगती है। विढम, मोखा और सरसो प्रपातो ने प्राकृतिक समृद्धि को बहुमान दिया है। शिवद्वार मिजापुर जनपद का ही एक छोटा-सा स्थान है। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए शिवद्वार के पास शकर और पावती की एक अनोखी मूर्ति है।

घोरावल मुख्य सड़क के दोनो ओर बसा पुराना कस्बा है। जरूरत की प्राय सभी वस्तुएँ यहाँ उपलब्ध हैं। शिवद्वार की दूरी घोरावल से छह किलोमीटर होगी यानी जीप का दसेक मिनट का रास्ता। दाहिनें बाएँ प्रकृति के सुरम्य दृश्य, जो मन पर गहरी छाप छोड़ते चलते हैं। मार्ग म मिलती है वेलन, लुढ़कती हुई, सर्पिल शली मे तमसा (टोंस) की ओर भागती हुई, सहायक जो है। भवभूति ने 'उत्तर रामचरित मे तमसा और मुरला नामक नदियो का सवाद प्रायोजित किया है। यह मुरला ही आजकल की वेलन है। शिवद्वार के मार्ग की वेलन सामान्य सी लगती है। यही नदी मोखा फाल पर अपनी अठखेलियो से पर्वत की चट्टानो को भी छवि मंडित करती है। पाथर की छाती तोड़कर उसके रध्र रध्र मे बहता हुआ पानी अपनी कलात्मकता का पूरा परिचय देता है। एक अनोखी जिन्दगी रचाता है यह पानी।

शिवद्वार पहुच कर मन मे अनेक भाव उठते हैं। शिव पार्वती की मूर्ति के बारे म अनेक बातें सुनी थी। सारा दृश्य सामने है। शरद् ऋतु की नरम धूप वृक्षा के झुरमुटो से छनकर आ रही थी। मंदिर के सामने की ओर मंडप के नीचे एक बड़ा हवनकुड, जिसके ऊपर किनारे पर बनी है स्रुवा, यानि के आकार की। पुजारी से प्रश्न करता हूँ तो कहता है कि उसने अपने मन से कुछ नहीं किया। यह तो शकराचार्य का आदेश था। जो भी हो, इस वाममार्गीय चेतना पर आश्चर्य होना स्वाभाविक था। हम विज्ञान के युग मे हैं। दृष्टि की वैज्ञानिकता पर ही विश्वास करते हैं।

मंदिर का अनुशासन ठीक वसे ही था जसे परपरित शैली मे अभी तक होता आया है। वहाँ कोई भी प्रश्नात्मक मुद्रा पुजारी को अच्छी नहीं लगती। बिना किसी आधार के भी विश्वास करते जाइए। पुजारी के मनोराज्य की इमारत भी विश्वास पर ही टिकी है। यहा तक की गुजाइश नहीं है। मंदिर के गर्भगृह के समीप खड़े होकर देखता हूँ। शिव पार्वती की लगभग तीन फुट ऊँची मूर्ति स्थापित है। एक मोटे और गन्दे कपड़े का आवरण मूर्ति के ऊपर खड़ा है। इसका कारण पूछने पर पुजारी कहता है—'मूर्ति म अश्लीलता है। एक धर्माचार्य आए थे। उन्होंने सलाह दी थी आवरण डालने की। आस पड़ोस के बुजुर्गों ने कहा कि यही ठीक है। *भगवान शकर की इस मुद्रा को जनता सहन नहीं कर पाएगी।*'

इस युगल मूर्ति मे इतिहास है। कलात्मक अतीत का लेखा-जोखा है। इसे पहचानने के लिए काफी पीछे जाना होगा। छेनी और हथौड़ी के प्रयास को पहचानना होगा। पुजारी ने आवरण हटा दिया। मेरे आग्रह करने पर ही उसे ऐसा करना पड़ा। *उसकी इच्छा नहीं थी मूर्ति अनावृत करने की। अनिच्छा से* किए गए काम की ग्लानि से आहत होकर पुजारी शकर पार्वती की मूर्ति की

दाईं ओर खड़ा हो गया। कहने लगा—"क्षमा करें, यह मूर्ति सभी के देखने लायक नहीं है। शृंगार और फिर भगवान भवानी का शृंगार मनुष्य कैसे देख सकता है। लगभग पचास साल पहले शंकर पार्वती की यह मूर्ति खेत से निकली थी। आपको क्या बतलाऊँ, पार्वती के हाथ से बहुत खून बहा। दर्शक उस समय भय से काँपने लगे थे।"

यह क्या ? पत्थर की पार्वती, हाथ से खून बहना और पुजारी का अटूट विश्वास हमारी जिज्ञासा को और बढ़ाता जा रहा था। आश्चर्य से रोमांचित होकर पूछा—"कैसा खून ?" प्रतिमा से खून बह सकता है क्या ? उत्तर मे लगा कि पुजारी ने किसी प्रस्तर खण्ड पर अपना विश्वास खोदकर हमे दिखा दिया है। "अरे, आप क्या कहते हैं। भवानी के बारे मे झूठ बोलूगा तो नरक जाऊँगा। आप जिस सड़क से आ रहे हैं उसकी दाईं ओर एक भीट देखा होगा। किसी वैभवशाली राजा का महल है जो खण्डहर बना वीरान धरती पर सो रहा है। नाम मैं नही जानता। बहुत पुरानी बात है। सदियाँ बीत गयी। वह नरेश कलाप्रेमी था, प्रतापी था। उसी ने यह मूर्ति बनवाई थी। अशात वातावरण मे उस राजा से मूर्ति की सुरक्षा सभव न थी इसलिए उसने कलाकृति को आततायियो के डर से खेत म गड़वा दिया। मैंने कहा न कि पचास-साठ वर्ष पहले एक किसान हल चला रहा था। हल की फाल मूर्ति से अटक गई। पार्वती के हाथो मे मोतियो से बना कगन था। फाल अटकने से कगन से कई मोती झर गए। हाथ मे नाक चुभाने से रक्त का फौवारा फूट पड़ा।" पुजारी जी रुआँसे हो गए।

आसक्ति और भक्ति की इस वाणी से मैं प्रभावित नही हुआ। अपने देश म ऐसी अनोखी बातो का बोलबाला है।

भगवान भवानी के साथ आश्चर्य की बात एव असभाव्य भी विश्वसनीय बन जाता है। ऐसे कथ्य जनता का मन मोह लेते हैं। पुजारी ने सरसो के तेल से मूर्ति को सराबोर कर रखा था। उसे नही पता था कि यह मूर्ति भक्ति का आधार नही है बल्कि पुरातत्व, इतिहास और कला की सामग्री है। तैल-स्नान से कोई केमिकल दुष्प्रभाव भी पड सकता है। ऐसी स्थिति म यह कलाकृति श्रीहीन होकर नष्ट हो सकती है। अभी जाने कितनी यात्रा करनी पड़ेगी। पुजारी के पाखण्ड और जनता की धर्मांधता से यह कलाकृति कब ऊपर आ पाएगी, क्या पता ?

तैलाक्त होने के कारण मूर्ति और अधिक काली हो गई है। सुदर्शन मुद्रा मे शिव आसन पर विराजमान हैं। उनकी बाइ जघा पर पार्वती बैठी हैं। शिव और पार्वती दोनो आन द विभोर स्थिति म हैं। शिव का बायाँ हाथ पार्वती के कधे पर से होता हुआ उनके बाएँ उरोज पर है। दायाँ हाथ प्रसादन की मुद्रा मे आह्लाद

सजोए ठोडी का स्पर्श कर रहा है। जिस प्रस्तर खण्ड पर यह मूर्ति गढी गई है वह न तो बहुत बडा है और न छोटा। आपाद मस्तक दोनो मूर्तियाँ अपने म पूण हैं सचमुच पावती के कगन का मोती गिरा हुआ है। शिव भी कगन पहने हैं। उनकी जटा ऊपर की ओर उठी हुई है। प्रभा मडल शिर प्रदेश के पीछे उरेहा गया है। अगो की लम्बाई और गोलाइया मे अनुपात का ध्यान कलाकार ने रखा है। खजुराहो की कला परपरा को ध्यान मे रखते हुए पावती के हाथ मे रचनाकार ने दपण का विधान किया है।

वसतागम के बाद अवध और विध्य प्रदेश मे आम्र मजरियो के साथ वातावरण को सुरभित और मादक बनाने मे महुए के रस भरे कला फूल सहायक होते हैं। इच इच भूमि सुवासित हो उठती है। गमकती हुई हवाए सभी को मधुर सपना का स्मति लोक दिखाती चलती हैं। महुआ के नन्हे नन्हे फूलो की *नशीली गध पोर पोर मे नूतन उमग भर* देती है। *शिवद्वार के शकर* और पावती के गले मे महुआ के नशीले-रशीले मक्खनी फूलो की माला है। कलाकार की यह सूझबूझ मूर्ति की सज्जा को और आकपक बनाती है। शकर की बाँहो पर नाग शोभित है। दाहिनी ओर त्रिशूल है जिसकी ऊँचाई उनके शिरप्रदेश के चारो ओर रचे गए प्रभामडल से कम है। त्रिशूल की एक नोक बहुत स्पष्ट नही है। प्रभामडल तीन गोलाइयो से आवेष्टित है जिनमे अलग अलग डिजाइनें बनाई गयी हैं। शकर और पावती के मुखमडल पर युवावस्था की काति है। परिरभण की इस मुद्रा को कलाकार ने एक प्रस्तर खण्ड पर रचकर समाज को समर्पित किया है।

सभवत यह कलाकृति काले पत्थर पर बनाई गई है। यही क्या कम था कि पुजारी ने आवरण उठाकर मूर्ति दिखाने की कृपा की। उससे अधिक पूछताछ की भी नही जा सकती थी। पावती का दाहिना हाथ शिव के कधे स होता हुआ उगलियो के सहारे भुजाओ पर टिका है। इसी हाथ के कगन से मोती झरे थे।

*पता चला कि इस इलाके से हमारी प्राचीन शिल्प सम्पदा की चोरियाँ* होती रही है। यदि समय से इस कलाकृति की सुरक्षा नही की जाती तो इसके साथ भी कुछ ऐसा घटित हो सकता है जो हमारे पछताने का कारण बन जाए। जनमानस अपने सोच को अपनी कला मे उतारता है। यहाँ तक कि अपने ईश्वर की परिकल्पना मे भी उसे सम्मिलित करता है। लिंग पूजा की प्रस्तावना के साथ साथ कलाकार ने लिंग के आकार मे ही शकर की आकति की कल्पना की। उनका चेहरा लिंग म ही रचा गया। नकटी की तलाई (खाह) से प्राप्त एक मुख लिंग इसी प्रकार का है। शिवद्वार वाले शकर की जटा और एकमुख लिंग मे खुदी आकति की जटा मे पर्याप्त समरूपता पाई जाती है। एकमुख लिंग की रचना परम्परा भारशिव नरेशो के युग की है। उसी युग की बनी हुई चारमुख

लिंग की भी मूर्तियां मिलती हैं। वास्तव मे इतिहास की टेढी मेढी वीथियो से वीथियां निकलती जाती हैं।

आध्र और मुरूड राजवशो के झडे काल ने असमय ही चुका दिए थे। इन्ही दिनो विध्य शक्ति का उदय हुआ था। भारशिव नागवशी राजाओ के अभ्युदय का काल भी यही था। शकर ही इस समय के आराध्य देव थे। आराधना की यह धारा वाकाटको के समय तक जाती है। शिव की प्रकृति से सभी लोग अच्छी तरह परिचित हैं। उनमे त्याग है, उदारता है और इसके साथ ही भौतिक मान्यताओ का विरोध है। उस समय के नरेशो म शिव के प्रति इतना आदर भाव बढा कि अनेक राजाओ ने अपने नाम के साथ 'रुद्र' या 'शिव' जोड लिया था। शिव भक्ति का यह रूप उत्तर और दक्षिण भारत मे समान रूप से व्याप्त था। *कल्याण और प्रसादन के आधार थे शकर।*

इस क्षेत्र मे कला के प्राचीन अवशेष अपने पूण-अपूण रूप से पाए जाते है पर इनकी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध सरकार की ओर स नही है। पाथर पूजने वाली जनता तो कलाकृति की भी पूजा ही करगी। शिवद्वार से थोडी ही दूर पर मदहा गाँव मे श्री अवध बिहारी चौबे के खेत मे एक बडा एव गढा हुआ पत्थर पडा है जिस पर अस्पष्ट सा कुछ लिखा भी है। नेपथ्य मे पडी पुरातत्व की यह सम्पदा मच पर कब आ पाएगी, कहना मुश्किल है।

शिवद्वार के मदिर के आसपास पडे हुए तक्षण कला के प्रतिमान के रूप मे अनेक प्रस्तर खण्ड अपनी प्राचीनता की कहानी कह रहे हैं। वहां के लोगो मे इन दुलम मूर्तियो को विदेशी बाजार मे बेचने की अनक बातें कही सुनी जाती हैं। मध्यकाल की रूपसियो की सी पावती की सज्जा देखकर या फिर शिव के साथ परमानद में लीन भाव से याद आती है उस गौरीव्रत की जो आराध्य को पाने के लिए किया गया था। पावती पहले श्याम वण की थी। एक बार इन्होन अनरकेश्वर तीथ मे स्नान किया। उसके बाद वही प्रतिष्ठापित शिव लिंग की पूजा दीपदान से की। फलत श्याम पावती तुरत गौरवण मे बदल गइ। शकर के साथ प्रणय लीला की बात चौंकाने वाली नही है। कालिदास ने तो सीमा के पार जाकर प्रसगत बहुत कुछ कहा है। पुराण की एक कथा के अनुसार लीला विलासिनी पावती शिव के साथ क्रीडारत थी। खेल खेल मे उन्होने शिव की आंखो के बद हो जाने पर चारो ओर अंधेरा छा गया। ऋषियो ने पावती की प्राथना की। उन्होने अपनी क्रीडा रोक दी।

शिव और पावती के साथ अनेक पौराणिक गाथाएँ और किंवदतियां जुडी हुई हैं। शिवद्वार की यह कलाकृति काल की चित्रपटी पर रची गयी हमारे प्राचीन इतिहास की मूल्यवान धरोहर है। शिव और पावती हमार अनेक मिथकों के आधार हैं। उस दृष्टि से भी इस कलाकृति की मूल्यवत्ता बढ़ जाती

है। वैसे भारतीय देवता विज्ञान के अंतर्गत सृष्टि की उत्पत्ति, संचालन और संहार के हेतु ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव (रुद्र) की कल्पना की गयी है।

प्रागैतिहासिक काल से भारत के चिंतन में शंकर और पार्वती की व्याप्ति है। वेदों में शंकर के संबंध में आश्चर्यजनक बातें कही गई हैं। पुराणों में शिव के जन्म में अचरजभरी कहानियाँ पाई जाती हैं। कहीं तो ब्रह्मा की भकुटि से पैदा हो रहे हैं और कहीं उनका रक्तवर्ण नीला हो रहा है। इतना ही नहीं यह शिव अपने पिता ब्रह्मा से नाराज होकर उसका पाँचवाँ सिर अपने नाखून से काटते हैं। अनेक कथाएँ हैं, कथाओं की उपकथाएँ हैं।

उपनिषद् की साक्षी में शिव का पर्याय ईशान रुद्र ही सृष्टि की सारी योनियों का स्वामी है। लिंगोपासना का संभवतः यही आधार होना चाहिए। हड़प्पा और मोहन जोदड़ो की खुदाई में भी शिव की प्रतिकृति प्राप्त हो चुकी है जिसका रूपाकार महाभारत में वर्णित शिव से मिलता-जुलता है। आगे चलकर तो शिवोपासना के अनेक सम्प्रदाय ही बन गए। लिंगायत सम्प्रदाय के उपासक अपने गले में शिवलिंग की प्रतिमा पहनते हैं। भारत की धरती शिव के प्रभाव से प्रभावित है। इसी प्रभाव का सुफल है शिवद्वार का वह कला प्रतिमान। कल्पना करता हूँ उस दिन की जब वह मूर्ति मंदिर से चलकर भारतीय राष्ट्रीय संग्रहालय की निधि बनेगी।

# सीमा मे असीम की खोज

जैनेन्द्र कुमार के साहित्य सृजन की कई धाराएँ हैं। वे कहानी कहते हैं, उपन्यासों में मनुष्य को उरेहते हैं, परखते हैं। पर इतने से ही उनका मन नही भरता। वे सोचते हैं, विचार करते हैं। चिन्तन को नया आयाम देकर कोई न कोई दार्शनिक तत्त्व खोज निकालते हैं। इस सारी प्रक्रिया मे वे अत्यन्त सहज लगते हैं। न कोई छद्म और न बनावट। न तो कोई टीमटाम और न कोई विशेष तैयारी। उनकी रचना यात्रा मे कई रूप हैं, विविधताएँ हैं संगतियाँ हैं, और विसंगतियाँ भी कम नही हैं। ऐसे ही कुछ मानव-जीवन भी होता है। वहाँ भी संगति और विसंगति का, प्रेम और घृणा का एक सामंजस्य सा पाया जाता है। जीवन भर जैनेन्द्र अपने चिन्तन, दर्शन और साहित्य मे इसी सामंजस्य को खोजते रहे हैं।

यात्रा लम्बी है। डगर कठिन है। संघर्षों से जूझना पडता है। हवा-बयार सहनी पडती है। बडे चढाव उतार हैं। आँधी और तूफान की तो गिनती ही नही है। इधर आगे बढने की ललक है। अदम्य उत्साह है। कुछ विशिष्ट कर डालने की चाह है। साथ ही इस जीवन के प्रति मोह भी है। यही कारण है कि जैनेन्द्र कुमार का लेखक एक ऊँचाई पर पहुँचकर अपने वातावरण को प्रभावित करता है। उनको तो प्रभावित करता ही है जो उसको समझते हैं पर उन्हें भी प्रभावित करता है जो उसे नही समझ पाते। कोशिश करने के बावजूद वह पकड म नही आता है। पकड मे आने पर भी छूट जाने की पूरी संभावना रहती है।

जैनेन्द्र कुमार के रचनागुरु आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने एक बार कहा था कि जैनेन्द्र तो जलेबीनुमा साहित्य लिखते हैं। कदाचित् उनका मन्तव्य रहा हो कि आदि और अंत के सिरे को पहचानने मे दिक्कत होती है। पर जलेबी मे आदि अंत के झमेले के बावजूद रस तो भरा ही रहता है। जैनेन्द्र सपाट किस्सा गो नही हैं। कहा न कि यहाँ तो राहो से राहें फूटती हैं। और जैनेन्द्र कुमार के लेखक के लिए सभी महत्त्वपूर्ण हैं।

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत थी। गुलामी के दिन थे। समाज के ऊपर

शासन की पकड़ मे कसाव था। और शासको ने पूरे समाज को कई स्तरो पर बाँट रखा था। राजा, महाराजा, उच्च, नीच, अधम जाने कितने तो भेद थे। वर्णाश्रम धम अलग था जो अपने सनातन रूप मे अधिकाश समाज को ग्राह्य था।

मेरे कुरेदने पर जैनेन्द्र जी ने *अपना बचपन याद किया।*

सब सुनी सुनायी बातें हैं। कुछ माँ रामदेवी बाई ने बतलायी थी। मामा भगवानदीन से भी अनेक बातो का पता चला था। उत्तर प्रदेश का नाम तब मुमालिक मुत्तहदा आगरा व अवध रहा होगा। इसी प्रदेश का अलीगढ जिला और वही का कस्बा कौडियागज। 2 जनवरी, 1905 ई० को जैनेन्द्र के जन्म के समय किसी बडी-बूढी ने बहुत हुलस कर नामकरण किया था—'सकटुआ'। और यह नाम ज्यादा समय तक जैनेन्द्र के साथ नही रहा। यह जन्म की तारीख भी बहुत प्रामाणिक नही है। अनुमानत कोई एक तारीख खोज ली गयी थी। बाद मे जैनेन्द्र के लेखक का वही जन्मदिन बन गया। सभव है 'सकटुआ' नाम किसी अनिष्ट की आशका से रखा गया हो। पुत्र जन्म के समय जनेन्द्र के पिता *कही बाहर गए थे। लौटने पर खबर सुनी। उन्होंने ही 'सकटुआ' नाम खारिज* करके आनदीलाल नाम रखा। पुत्र जन्म का समय उछाह का होता है, आनद का होता है। सो आनदीलाल नाम से जनेन्द्र के बालपन की पहचान बनी।

जनेन्द्र का खानदान पल्लीवाल नाम से जाना जाता था।

पल्लीवालो मे दो वग थे। उनमे एक तो सयतानी और दूसरा फतेहपुरिया नाम से प्रसिद्ध था। जैनेन्द्र कुमार इसी फतेहपुरिया वग के थे। एक बडा समाज छोटे छोटे समाजो मे बँटा था। यह विभाजन और वर्गों मे आगे बँटता गया। यदि बँटवारे के कारणो की पडताल की जाय तो पता चलेगा कि कारण बहुत ही नगण्य थे पर मन माने की बात है। ज्ञानी विज्ञानी लोगो के होते हुए भी समाज निरतर बिखराता चला गया। पल्लीवालो के यहाँ कपडे पर छापी लगाने का काम होता था। यह पेशा खानदानी था। जहाँ तक होता परिवार के लोग अपने पुश्तैनी धधे मे ही रुचि लेकर लग जाते। जैनेन्द्र के पिता प्यारेलाल कपडे की पैठ करते थे। यदि उनकी देखरेख मे जैनेन्द्र का पालन-पोषण होता तो आगे का क्या रास्ता बनता, अनुमान लगाना सहज है।

प्यारेलाल जी अपनी कमठता और पुत्र स्नेह [illegible] नेकर
चले गए। अपने आनदीलाल के भविष्य के बारे मे [illegible]
जान न पाया। भविष्य को अज्ञात की सज्ञा [illegible]
*वर्तमान भी अनजाना* रह जाता है। असमय [illegible]
रहता है। अवश होने [illegible] री सूझ बूझ
है। दो वष की उम्र का [illegible]
भविष्य की तो बात कर [illegible] दो

ग्रंथियो का कारण बन सकती थी पर ऐसा नही हुआ। माँ का वात्सल्य और मामा का स्नेह ही इस दो साल के शिशु का सहायक बना। जैनेन्द्र के नाना गगाराम जी अतरौली के रहने वाले थे। यह भी अलीगढ जिले का ही एक कस्बा है। यहाँ मुस्लिम प्रभाव ज्यादा था। ननिहाल मे बच्चे को लाड ज्यादा मिलता है। मामा की सलाह पर अपने दो साल के पुत्र को गोद मे लेकर जैनेन्द्र की माँ अतरौली चली गयी थीं। दोनो बेटियाँ भी साथ ही थी।

लडकी के लिए पिता का घर सुविधाओ का भडार होता है।

दुःख का हिमालय पार कर जैनेन्द्र की माँ अतरौली पहुँची थी। कौडियागज पीछे छूट गया था। जैनेन्द्र की स्मृति मे अपने पितृ स्थान का महत्त्व था पर इतना ही कि वे वहाँ पैदा हुए थे। जब तक आदमी का वश चलता है, यादो की गठरी को लादे चलता है। थक जाने पर सारा बोझ उतार फेंकता है। जनेन्द्र को कौडियागज से ज्यादा अतरौली याद है। वहाँ का वातावरण, बाजार, घर, दुकानें, पड पल्लव सभी जैसे उनके बचपन के सगी साथी हों। जैनेन्द्र कुमार की दो बडी बहनें थी—सुभद्रा और सौभाग्यवती।

अतरौली में ही जैनेन्द्र को अक्षर ज्ञान का मौका मिला। अलिफ, बे वही सीखा। विपत्ति की आँधी अभी रुकी नही थी। नाना भी असमय ही स्वर्ग सिधार गए। बालक जैनेन्द्र वह इम्तहान दे रहा था जिसका परीक्षाफल किसी निश्चित तारीख को नही निकलना था। उनके मामा महात्मा भगवानदीन पर पूरे परिवार का बोझ था ही। सस्कारी व्यक्ति थे। अनुशासन की नीव पर उनके व्यक्तित्व की इमारत खडी थी। अपने परिवार की जिम्मेदारी (पत्नी और पुत्र) बहन और उसके तीन बच्चे। सभी को चाहिए खाने-पीने की व्यवस्था और एक स्थिर आश्रय का विश्वास। जैनेन्द्र याद करते हैं कि उन्हें यह सब कुछ अपने मामा से मिला। माँ के सामने आपदा का रेगिस्तान था तो मामा के सामने कम कठिनाइयाँ न थी। दोनों मे सकट से जूझने का एक जुझारूपन था। दोनो परिवारो को लेकर महात्मा भगवानदीन फतेहपुर में रेलवे की नौकरी करने चले गए। कुछ तो बात बनी। जहाँ जीवन यापन के लिए कोई ठोस आधार ही नहीं था वहाँ पन्द्रह रुपये महीने की नौकरी में सभी परिजनो को एक बडी उम्मीद झलकने लगी।

महात्मा भगवानदीन कलियुग में रहने वाले सतयुगी व्यक्ति थे। जैनेन्द्र के व्यक्तित्व पर उनकी अमिट छाप है जैसे अभी कल की ही बात हो। दुनिया अपनी चाल चलती है। यहाँ कौन चिन्ता करता है। एक भगदड मची है। जिसके पर मजबूत हैं, वह आगे बढ रहा है जो कमजोर हैं वे नीचे गिर रहे हैं। पीछे से आने वाली भीड उन्ही के ऊपर से गुजर रही है। कौन देखता है मुडकर। इस अर्थ प्रधान युग में महात्मा भगवानदीन ज्यादा दिन तक नौकरी नही कर

नाम आनंदीलाल का भी था। उम्र थी सात वर्ष। गेंदालाल का लड़का देवेन्द्र इसी गुरुकुल का छात्र था। हस्तिनापुर के लिए मेरठ से थोड़ी दूर तक प… सड़क, आगे कच्ची। कुल दूरी थी चौबीस मील।

जंगल, जैनतीर्थ, जैनियों के दो मंदिर, जैन धर्मशाला यही सब मिला… हस्तिनापुर बनता था। अब उसमें ऋषभ ब्रह्मचर्य आश्रम का एक अच्छा … और जुड़ गया। इसी गुरुकुल में आनंदीलाल का नया नामकरण जैनेन्द्र कु… किया गया था।

महात्मा भगवानदीन एक स्थान पर टिककर काम करने वाले न थे। सत्या… जेलयात्रा और अन्य कई सक्रियताओं में वे व्यस्त रहते थे। जैनेन्द्र ने मैट्रि… परीक्षा प्राइवेट पास की थी। आगे की पढ़ाई करने सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज का… गए। गुरुकुली वातावरण यहाँ नहीं था। बार बार याद आता गुरुकुल का अ… शासन, जिसमें रहकर उन्होंने भूगोल, संस्कृत, अंग्रेजी और जैन धर्म का अध्य… किया था। अंतेवासी आनंदीलाल अनुशासन में ढील चाहता था। यहाँ तक… प्रातः चार बजे उठने में उसे कठिनाई होती थी। सात साल का समय कम … होता। आश्रम से बाहर आने पर जैनेन्द्र का जीवन एक खास साँचे में ढल चु… था। सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का ही एक अंग था। … जिस नये वातावरण से साक्षात्कार हुआ वह जैनेन्द्र के लिए उपयुक्त अ… उपयोगी दोनों था। यादों के अलबम में कहीं लिखा बचा है कि लाला भगवानदी… ने जैनेन्द्र को हिन्दी पढ़ाई थी। मलकानी महोदय की अंग्रेजी शिक्षा भी भूली न… है। स्मृतियों की पिटारी खुलती है तो खुलती ही जाती है। इनका एक सहपा… था शिवदास गुप्त हरी। उसकी कविताओं की प्रशंसा करते हुए जैनेन्द्र दूर क… यादों के बियाबान में खो जाते हैं।

नदी मेरी सबसे बड़ी कमजोरी है। उसकी चर्चा मुझे बहुत लुभाती है। न… के स्वभाव की स्त्री और पुरुष दोनों मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। यह और… अधिक अच्छा लगता है कि हर नदी का स्वभाव अलग अलग होता है। गतिमय… और एक लापरवाह अप्रसारण तो सभी में होता है। पूछता हूँ जैनेन्द्र से बनार… की गंगा के बारे में। उम्मीद थी कि धीर प्रशांत गंगा का एक आकर्षक गति चि… उनकी जुबान से उतरेगा और मुझे बाँध लेगा, सोचने के लिए मजबूर करेग… दो टूक बात करते हैं जैनेन्द्र। अस्सी घाट प्रायः जाना होता था पर इसलिए न… कि गंगा बहुत आकर्षक लगती थी। कहते हैं कि पार जाने के लिए उतर पड़े… थोड़ा आगे बढ़े। मझधार आ गयी। थकने लगे। अभी तो दूसरा घाट दूर था… । और कोई सहारा भी न था। हिम्मत हारने पर कुछ भी हाथ आने वाला… था। और थकान लगी। यह भी सोच लिया कि थकान तो मन की होती है… । कहा था कि मझधार कोई अवलंब नहीं है। निराशा दूर हुई। उस पा…

सके। जनेन्द्र ने महात्मा गाधी की 'महात्माई' से महात्मा भगवानदीन की तुलना की है। गाधी जी तिल तिल बटोर कर देश को देते रहे पर 'भगवानदीन जी बिखरात चले जाते हैं जस किसान खेत मे धान बिखराता है।' उनकी मूल प्रवत्ति में माधना झलक मारती है। धम उन्हें सोचने और समझने की दृष्टि देता है। जने द्र जिस वक्त ये सारी बातें याद करते हैं, उनके चेहरे पर एक अचरज भरी निरीहता उतर आती है।

अध्ययन चितन और मनन से जो दृढ भ्रन उदभूत हुआ उसने एक भीष्म प्रतिज्ञा को जन्म दिया। अब महात्मा भगवानदीन आजीवन ब्रह्मचारी रहेगे, धार्मिक पुस्तकें पढेंगे और तीर्थाटन का लाभ उठाएँगे। इस प्रतिज्ञा को तुरत उन्होंने जीवन मे उतारा। अपने एक साथी गेंदालाल के साथ वे तीर्थाटन पर निकल गए। परिवार बोरिया बिस्तर बाँधकर अतरौली लौट आया। एक सपना दीखा पर उससे पूव का देखा हुआ सपना बिखर गया। जब बिखरना ही रहना है तो ये सपने दिखायी ही क्यो पडते हैं। सचमुच नीद की सम्पत्ति होते हैं ये सपने। जैनेन्द्र की माता की कमठता की गगा मे दो पिपासु और आ मिली। गेंदालाल अपनी दो कम वय वाली पुत्रियो की जिम्मेदारी इन्ही पर छोड गए।

समय पख फुलाकर उड ही रहा था। उसकी त्वरा देखकर जसे महात्मा भगवानदीन अपने सारे काम समय से पहले ही कर लेना चाहते थे। जनेन्द्र कहते हैं—"तीव्र बुद्धि, मौलिक विचार शक्ति, स्फूर्तिमान प्रकृति, सेवा त्याग, निस्पहता और अनुभव की जिन्दादिल प्रतिभा, धम, साहित्य और राजनीति की चोटी पर पहुँच, यह है महात्मा जी का अल्पतम शाब्दिक परिचय।' कहा करते थे जैनेन्द्र से महात्मा भगवानदीन—' ऊँचे दर्जे के आदमी अपनी जिन्दगी जब शुरू करते हैं तब सकडो सवालो का हल वह नही जानते। उनके कामचलाऊ जवाब सोच लेते हैं और आगे बढते हैं। अपनी अजानकारी को कहने मे उनकी खुशी होती है, झिझक नही।"

अपने अनुभवो को उन्होने अक्षरो मे बाँधा था। जनेन्द्र को उनके विचारो मे शक्ति की चिनगारियाँ दीखी थी। जवानो के नाम कई लेख उनके मिलते हैं। अगली पीढी मे वे सकल्पना और शक्ति के चिह्न देखते थे। उनके उदबोधनो को जनेन्द्र नयी पीढी का सकेतक मानते हैं। दोनो की आयु मे बीस इक्कीस साल का अतर था। महात्मा जी एक प्रकार से जनेन्द्र के दिग्दशक थे, टॉर्च बियरर थे।

कागडी की यात्रा के दौरान महात्मा जी के मन म एक रचनात्मक कल्पना आयी। क्यो न एक गुरुकुल की स्थापना की जाए। घर के बच्चे तो पढेंगे ही, समाज पर भी उसका असर पडेगा। इन्ही विचारो की नीव पर हस्तिनापुर (मेरठ) मे महात्मा भगवानदीन ने ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम नाम स गुरुकुल की स्थापना की। सबस पहले पाच छात्रो को प्रवेश दिया गया। इन पाँचों मे एक

नाम आनदीलाल का भी था। उम्र भी सात वर्ष। गेंदालाल का लडका देवेन्द्र भी इसी गुरुकुल का छात्र था। हस्तिनापुर के लिए मेरठ से थोडी दूर तक पक्की सडक, आगे कच्ची। कुल दूरी थी चौबीस मील।

जगल, जैनतीर्थ, जैनियो के दो मदिर, जैन धर्मशाला यही सब मिलाकर हस्तिनापुर बनता था। अब उसमे ऋषभ ब्रह्मचर्य आश्रम का एक अच्छा नाम और जुड गया। इसी गुरुकुल मे आनदीलाल का नया नामकरण जैनेन्द्र कुमार किया गया था।

महात्मा भगवानदीन एक स्थान पर रुककर काम करने वाले न थे। सत्याग्रह, जेलयात्रा और अन्य कई सक्रियताओ मे वे व्यस्त रहते थे। जनेन्द्र न मट्रिक की परीक्षा प्राइवेट पास की थी। आगे की पढाई करने सेण्ट्रल हिन्दू कॉलज बनारस गए। गुरुकुली वातावरण यहाँ नही था। बार बार याद आता गुरुकुल का अनुशासन, जिसमे रहकर उन्होंने भूगोल, सस्कृत, अग्रेजी और जन धर्म का अध्ययन किया था। अन्तेवासी आनदीलाल अनुशासन मे ढील चाहता था। यहाँ तक कि प्रात चार बजे उठने मे उसे कठिनाई होती थी। सात साल का समय कम नही होता। आश्रम से बाहर आने पर जैनेन्द्र का जीवन एक खास साँचे मे ढल चुका था। सेण्ट्रल हिन्दू कालेज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का ही एक अग था। वहाँ जिस नये वातावरण से साक्षात्कार हुआ वह जनेन्द्र के लिए उपयुक्त और उपयोगी दोनो था। यादों के अलबम म कही लिखा बचा है कि लाला भगवानदीन ने जनेन्द्र को हिन्दी पढाई थी। मलकानी महोदय की अग्रेजी शिक्षा भी भूली नही है। स्मृतियो की पिटारी खुलती है तो खुलती ही जाती है। इनका एक सहपाठी था शिवदास गुप्त हरी। उसकी कविताओ की प्रशसा करते हुए जनेन्द्र दूर कही यादो के बियाबान मे खो जाते हैं।

नदी मेरी सबसे बडी कमजोरी है। उसकी चर्चा मुझे बहुत लुभाती है। नदी के स्वभाव की स्त्री और पुरुष दोनो मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। यह और भी अधिक अच्छा लगता है कि हर नदी का स्वभाव अलग अलग होता है। गतिमयता और एक लापरवाह अप्रसारण तो सभी मे होता है। पूछता हूँ जैनेन्द्र से बनारस की गगा के बारे मे। उम्मीद थी कि धीर प्रशात गगा का एक आकर्षक गनि चित्र उनकी जुबान मे उतरेगा और मुझे बाँध लेगा, सोचने के लिए मजबूर करेगा। दो टूक बात करते हैं जैनेन्द्र। अस्सी घाट प्राय जाना होता था पर इसलिए नहीं कि गगा बहुत आकर्षक लगती थी। कहते हैं कि पार जाने के लिए उतर पडे। थोडा आगे बढे। मझधार आ गयी। थकने लगे। अभी तो दूसरा घाट दूर था। वहाँ और कोई सहारा भी न था। हिम्मत हारने पर कुछ भी हाथ आने वाला नहीं था। और थकान लगी। यह भी सोच लिया कि थकान तो मन की होती है। मन ने ही कहा था कि मँझधार कोई अवलब नही है। निराशा दूर हुई। उस पार

जा लगे। हिम्मत बढ गयी। जैसे गगा पार किया था वैसे घाट पर वापस आ गए। बस गगा को इतना ही जाना था। उस समय उम्र साढे चौदह साल रही होगी। अस्सी पर ही जन सस्था का स्याद्वाद महाविद्यालय है। वही जैनेन्द्र जाया करते थे।

माँ अतरौली मे थी। उनके लिए जिम्मेदारी की लढ़िया ठेलना बहुत भारी पड रहा था। अतरौली मे आय का कोई साधन नही था। भाई का भाग अलग था जिससे उन्हें कोई परेशानी न थी। त्याग का भाग बुरा नही होता। स्पृही तो लाखो करोडो हैं पर त्यागी तो कोई बिरला ही होता है। अपने भाई का सत्पथ उन्ह बहुत प्रिय लगता था।

बहुत झीना झीना स्मरण है जैनेन्द्र को।

अतरौली वाले घर म अरहर की दाल तैयार होती थी। चक्कियाँ चलती थी। माँ और भाभी के साथ अन्य लोग भी दाल दलते थे। यह व्यवसाय घाटा दे गया। इक्के चलवाने का व्यवसाय भी नही चल सका। ऐसे मे व्यक्ति की हिम्मत की परीक्षा होती है। जैनेन्द्र की माँ इस इम्तहान मे अव्वल उत्तीर्ण होती थीं। जनेन्द्र मे फाकामस्ती थी, लापरवाही थी सो माँ बनारस मे रहने का खच सीधे बेटे को न भेजकर किसी और को भेजती थीं। हिम्मत की छलांग ऐसी लगाई माँ ने कि सारे परिवार के साथ वे बम्बई पहुच गयी थी। वहाँ उन्होंने अपनी काय कुशलता, व्यावहारिकता और समाज सेवा के कार्यों मे दक्षता प्राप्त कर ली।

कमठ व्यक्ति के लिए सारा विश्व परीक्षा स्थल है। बिना तैयारी के यह परीक्षा उत्तीण करना मुश्किल है। कभी कभी ऐसे सवालो से पाला पडता है कि अत्यत निपुण व्यक्ति भी चकरा जाता है। बम्बई से दिल्ली आन मे माँ को थोडी देर लगी। धार्मिक अनुष्ठानो मे भाग लेने मे उनकी विशेष रुचि थी। सन 1918 मे दिल्ली मे जैन महिलाश्रम की सचालिका का कायभार सँभाला था।

बनवारीलाल के नाम एक व्यक्ति ने महात्मा भगवानदीन से गुरुकुल मे काम करने के लिए कहा था। पता नही क्यो उन्होंने बनवारीलाल को वजीफा देकर प्रेम महाविद्यालय मथुरा भेज दिया। वहाँ मन न लगने के कारण वह वापस दिल्ली आ गए। भाई की सलाह पर जनेन्द्र की माता जी ने बनवारीलाल को मदद के लिए कुछ रुपये दिए थे।

नयी योजना बनी। जनेन्द्र ने नाम सुझाया था 'भगवान एण्ड कपनी'। बनवारीलाल की देखरेख मे कम्पनी का काम आगे बढने लगा। यहाँ जनेन्द्र के काम करने का कोई मतलब ही नही था। वह सपना देखते थे। योजनाएँ बुनते थे। माँ की परेशानियो की सूची तयार करते थे। पर इतने मात्र से कुछ भी होने वाला नही था। कुछ ही दिनो मे बनवारीलाल का कायाकल्प एक सेठ के रूप में हो गया। भगवान एण्ड कम्पनी पर पूरी तरह बनवारीलाल काबिज हो गए।

यह बात माँ और मामा को दुखी कर गयी। जिसकी सहायता कीजिए वही जड़ें काटने लगता है। जिसकी बुभुक्षा शांत कीजिए वही खूंखार बन जाता है।

माँ ने अपने पैसे वापस माँगे। कुल बारह हजार निकलते थे। बनवारी ने कहा, कि 'तीन हजार बनते हैं और इतना ही मैं दे सकूंगा।' महात्मा जी ने पूछा—'अभी दे सकते हो तीन हजार?' इतना ही पाकर मामला रफा दफा किया गया। बहन को भाई ने समझाते हुए कहा था—'जो मिल रहा है, ले लो अन्यथा यह भी नहीं मिलेगा।' वह मान गयी। उसे चिन्ता थी कि बेटा कुछ बन जाता तो उसकी परेशानी दूर होती। पर अपना चाहा होता कहाँ है। फर्नीचर वर्कशाप, सूत की दूकान, बुनाई की कक्षा सभी से छुट्टी मिली।

बनारस मे पढाई का खर्चा तीस रुपये माहवार भेजा जाता था। वह भी साथी दीपचन्द के माध्यम से। पाँच रुपये फीस के निकल जाते थे। बाकी पचीस से सारा खर्च चलता था। ग्यारहवीं उत्तीर्ण करके बारहवीं में पहुँचने पर कई घटनाएँ एक साथ घटीं। समय था सन 1920 का। अचानक महाराज तिलक का देहावसान हो गया। राजनीति की अनिश्चितता सभी के सामने थी। संघर्ष का मार्ग लम्बा होने पर किसी भी कौम को बडी मजबूती से कमर कसनी होती है। आजादी बहुत सस्ती न थी। उसके हवन-कुंड मे आहुतियाँ दी जा रही थी। तब तो दीवानों को यह भी आभास नहीं रहा होगा कि सैंतालीस में हम मुक्त हो जाएँगे।

तिलक की मृत्यु पर बनारस मे एक मीटिंग हुई। जहाँ काशी विद्यापीठ है, वहीं एक हॉस्टल था। तै हुआ कि सभा वहीं की जाए। गण्यमान्य लोगों के भाषण हुए। सारा उत्साह बटोर कर जैनेन्द्र भी कुछ बोले। आचार्य कृपलानी उस समय प्राध्यापक थे। वहाँ जोशील भाषण का परिणाम यह हुआ कि कृपलानी के साथ ही अनेक छात्रो ने शिक्षा का बहिष्कार किया। ये सब अपनी स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए सीधे मैदान मे आ गए।

सभी की देखादेखी जैनेन्द्र के मन मे असहयोग आन्दोलन मे शामिल होने की इच्छा जागी। कई समस्याएँ थी। माँ को पता नहीं। मामा से पूछा नहीं। परिवार में रहते हुए अकेले कैसे निर्णय लिया जा सकता है। पढ़ाई छोडकर असहयोग मे शामिल हो—कितना बडा निश्चय है? पर यह जो असहयोगियों की पूरी फौज ही तैयार हो गयी है, इसमे कहीं न कहीं संकल्प शक्ति अवश्य है। साथ मे यह भी कि चिनगारी बुझने वाली नहीं है। इसे ज्वाला बनते देर नहीं लगेगी।

अनुमति के लिए मामा महात्मा भगवानदीन को पत्र लिखा गया। लौटती डाक से उत्तर मिला—'पत्र लिखने से पहले ही तुम्हें पढाई छोडकर असहयोग आन्दोलन मे कूद पडना चाहिए था।'

महात्मा भगवानदीन जैनेन्द्र के मामा और अभिभावक दोनो थे। उनमे राष्ट्र और समाज के प्रति अनुराग था। स्वतन्त्रता की चाह थी। सिद्धातो के अमल मे उनका विश्वास था। युवको को क्म माग पर चलाने की चाह भी उनमे थी। यह जानते हुए भी कि गिरिस्ती की गाडी खीचने वाला कोई नही है, उन्होने जैनेन्द्र को आन्दोलन मे शामिल और सक्रिय होने की सलाह दी। उनके सामने अब कोई अडचन नही थी। मामा के पत्र ने न केवल आश्वस्त किया बल्कि जनेन्द्र को ललकारा भी। इस ललकार से जैनेन्द्र ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड दी। असहयोग के फनस्वरूप स्थान-स्थान पर गाधी आश्रमो की स्थापना होने लगी थी। सन 1920 की ही तो बात है।

बहुत आगे बढकर कोई भी नया काम करने से जनेन्द्र घबडाते थे। पर अब ऐसे काम चलने वाला नही था। मन मे उमग थी। हिम्मत को साथ देना पडेगा। दब्बूपन मे काम नहीं बनने का। अबूझ रास्ते पर चल पडन के लिए झेंप छोडनी पडेगी। चीखने चिल्लाने से कुछ नही बनेगा। मजिल पाने के लिए आगे जाना ही होगा। युवावस्था का जोश जैनेन्द्र को नागपुर ले गया। सन् 1923 मे वहाँ झडा सत्याग्रह हुआ था। हुक्म था सरकारी कि सिविल लाइन म झडा नहीं जा सकता। सत्याग्रह का यही मुख्य कारण था। सरकारी शक्ति ने सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया। अपनी गिरफ्तारी स जनेन्द्र विचलित नही हुए। यह एक नया अनुभव था उनके लिए। राजद्रोह के चाज के बारे मे सुना जरूर था पर उससे पाला अब पडा। अपना राज चाहने वाला पर ही बतानियाँ हुकूमत राजद्रोह और खिलाफत का चाज लगा रही थी। उद्देश्य बडा होने पर तकलीफें साहस देती हैं। छोटी छोटी शक्तियाँ मिल जुलकर बडी बन रही थी। बडी बनकर एक और बडी शक्ति से लोहा लेने के लिए तैयार थी।

जैनेन्द्र का काम सवाददाता का था। जसे दूत अवध्य होता है वैस सवाददाता को भी छूट मिलती है। हुकूमत की आँखें अहकार म मुद जाती हैं। उसके सोच की इमारत बनावटी शक्ति की नीव पर खडी होती है। जन बल की आधी ऐसी इमारत सह नहीं पाती। अब तो भारत की जनता अपना मानापमान पहचानने लगी थी। जनेन्द्र की गिरफ्तारी के समय गोवन कलक्टर थ। बाम्बे क्रानिकल के राघवन से भेंट कलक्टर के यहाँ ही हुई। नाम सुन रखा था पर परिचय नही था। राघवन न कलक्टर से पूछा—'इन्हें आप जानत हैं?' साथ ही यह भी कि यह तो रोज मिलत ही रहते हैं। कलक्टर की इच्छा थी कि कोई भी खबर प्रेस को दते समय जैनेन्द्र उसे साहब के दफ्तर म दिखा लें। इन्होन साफ इन्कार कर दिया। यह सुविधाजनक नही होगा जैसा वाक्य भी कलक्टर को सदा के लिए चिढा गया। राघवन के मुह से निकल गया कि 'यह महात्मा भगवानदीन के भाजे हैं। कलक्टर का मन ठनका। उसे दाल में कुछ काला लगा।

उस समय स्तनी नाम के सज्जन (सज्जन ही कहना चाहिए) वहाँ सिटी मजिस्ट्रेट के पद पर तैनात थे। उनका सम्मन आ गया कि जनेन्द्र को काट मे हाजिर होना है ठीक दस बजे। सम्मन पर विशेष रूप से उ होने लिखा—'दस बजे आने की सुविधा नहीं होगी। साढे तीन बजे आ पाऊँगा।' दिए हुए समय पर मजिस्ट्रेट की कोट म पहुँच गए। इस प्रकार की परीक्षाओ का जीवन मे बडा महत्त्व होता है। छोटे छोटे इम्तहानो को पास करके लगता है जैसे हम किसी बडे इम्तहान की तैयारी कर रहे हो। ऐसा ही कुछ हुआ था किशोर जैनेन्द्र के साथ।

मजिस्ट्रेट स्लेनी ने इन्हे कुर्सी पर बठने के लिए कहा। अपन बचाव के लिए जनेन्द्र न मजिस्ट्रेट से कुछ कहा नही। लक्ष्य यह था भी नही। उन दिनो घर बार छाड करके जाएँगे जेलखाना' गीत बहुत प्रसिद्ध था और शान के साथ गाया जाता था। मर्ना की प्रतिज्ञा थी कि बिना स्वराज्य के हम पीछे नही हटेंगे। मजिस्ट्रेट ने कुर्सी देकर आवभगत चाहे जो की हो पर जने द्र को नागपूर सेण्ट्रल जेल भेज दिया गया। उस समय कैदी की उम्र थी साढे सत्तरह साल।

इन बातो की रील अतीत के अटेरन मे लिपट चुकी है। पीछे की ओर बडे ध्यान से देखते हैं जैनेन्द्र। उन्हें याद आता है जेल का सुपरिन्टेंडेंट। महाराष्ट के ब्राह्मण। उसने समझा कि कोई खतरनाक कदी जेल मे आया है। उसकी इस समझ का आधार क्या था, कहा नही जा सकता। कद काठी, और रूप रग म भी ऐसी कोई बात नही दीखती थी। पर अफसर तो अफ्सर होता है। उसका तक अकाटय होता है उसके अनुसार। अपनी समझ के ही आधार पर जेल अधिकारी ने इन्हें तनहाई वाले सेल मे भेज दिया। बहुत तग कोठरी। स्वय से बात करना, स्वय के साथ जीना और स्वय मे ही सिमटे रहना कितना कठिन होता होगा। सजा कोई भी हो अपनी प्रकृति मे वह त्रासद होती ही है।

नागपुर केन्द्रीय कारागार मे जैनन्द्र को तमाम वालटियस मिले। रविशकर महाराज थे, विनोबा थे और कई अ य प्रसिद्ध नेता थे। बाद मे पुलिस से ही पता चला था कि जैनेन्द्र का नाम दगाइयो मे था। पटुवा कूटना, रस्सी बुनना मुख्य काम था जेल मे।

पहल से ही काम निश्चित कर दिया जाता था। समय दे देते थे अधिकारी। उसी उतन समय मे वह काम पूरा करना पडता था। इस परिणाम के पीछे भय उतना नहीं था जितनी कमशीलता थी। कभी कभी पुलिस की त्योरियाँ चढती भी थी पर ऐसा बहुत कम देखा जाता था।

पहनन के लिए जेल का ही कपडा मिलता था। कैदी बाकायदे कैदी लगता था। ज्वार की रोटी खाने को मिलती थी। दाल साग बहुत घटिया स्तर का। दाल मे तो इतना पानी होता था कि दाल मुश्किल से कही दीख जाती थी। मोटी मोटी लाल मिर्चों से छौंक लगती थी। इतनी तीती दाल मिलती थी कि

महात्मा भगवानदीन जैनेन्द्र के मामा और अभिभावक दोनो थे। उनमे राष्ट्र और समाज के प्रति अनुराग था। स्वतन्त्रता की चाह थी। सिद्धातो के अमल मे उनका विश्वास था। युवको को कम मार्ग पर चलाने की चाह भी उनमे थी। यह जानते हुए भी कि गिरिस्ती की गाडी खीचने वाला कोई नही है, उन्होने जैनेन्द्र को आन्दोलन मे शामिल और सक्रिय होने की सलाह दी। उनके सामने अब कोई अडचन नही थी। मामा के पत्र ने न केवल आश्वस्त किया बल्कि जनेन्द्र को ललकारा भी। इस ललकार से जैनेन्द्र ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की पढाई छोड दी। असहयोग के फलस्वरूप स्थान-स्थान पर गाधी आश्रमो की स्थापना होने लगी थी। सन 1920 की ही तो बात है।

बहुत आगे बढकर कोई भी नया काम करने से जनेन्द्र घबडाते थे। पर अब ऐसे काम चलने वाला नही था। मन मे उमग थी। हिम्मत को साथ देना पडेगा। दब्बूपन मे काम नही बनने का। अबूझ रास्ते पर चल पडने के लिए झेंप छाडनी पडेगी। चीखन चिल्लाने से कुछ नही बनेगा। मजिल पाने के लिए आगे जाना ही होगा। युवावस्था का जोश जैनेन्द्र को नागपुर ले गया। सन् 1923 मे वहाँ झडा सत्याग्रह हुआ था। हुक्म था सरकारी कि सिविल लाइन मे झडा नही जा सकता। सत्याग्रह का यही मुख्य कारण था। सरकारी शक्ति ने सत्याग्रहियो का गिरफ्तार किया। अपनी गिरफ्तारी स जनेन्द्र विचलित नही हुए। यह एक नया अनुभव था उनके लिए। राजद्रोह के चाज के बारे मे सुना जरूर था पर उससे पाला अब पडा। अपना राज चाहने वालो पर ही वर्तानियाँ हुकूमत राजद्रोह और खिलाफत का चाज लगा रही थी। उद्देश्य बडा होने पर तकलीफें साहस देती हैं। छोटी छोटी शक्तियाँ मिल जुलकर बडी बन रही थी। बडी बनकर एक और बडी शक्ति से लोहा लेन के लिए तैयार थी।

जैनेन्द्र का काम सवाददाता का था। जसे दूत अवध्य होता है वैसे सवाददाता को भी छूट मिलती है। हुकूमत की आँखें अहकार मे मुद जाती हैं। उसके सोच की इमारत बनावटी शक्ति की नीव पर खडी होती है। जन बल की आधी ऐसी इमारत सह नही पाती। अब तो भारत की जनता अपना मानापमान पहचानने लगी थी। जनेन्द्र की गिरफ्तारी के समय गोवन कलक्टर थ। बाम्बे क्रानिकल के राघवन से भेंट कलक्टर के यहाँ ही हुई। नाम सुन रखा था पर परिचय नही था। राघवन ने कलक्टर स पूछा—'इन्हें आप जानते हैं?' साथ ही यह भी कि यह तो रोज मिलत ही रहते हैं। कलक्टर की इच्छा थी कि कोई भी खबर प्रेस को दत समय जनेन्द्र उस साहब के दफ्तर म दिखा लें। इन्होने साफ इनकार कर दिया। 'यह सुविधाजनक नही होगा जैसा वाक्य भी कलक्टर को सुनने के लिए चिढा गया। राघवन के मुह स निकल गया कि 'यह महात्मा भगवानदीन के भाजे हैं। कलक्टर का मन ठनका। उसे दाल में कुछ काला लगा।

उस समय स्नेनी नाम के सज्जन (सज्जन ही कहना चाहिए) वहाँ सिटी मजिस्ट्रेट के पद पर तैनात थे। उनका सम्मन आ गया कि जनेन्द्र का कोर्ट मे हाजिर होना है ठीक दस बजे। सम्मन पर विशेष रूप से उन्होने लिखा—'दस बजे आने की सुविधा नही होगी। साढे तीन बजे आ पाऊँगा।' दिए हुए समय पर मजिस्ट्रेट की कोर्ट मे पहुँच गए। इस प्रकार की परीक्षाओं का जीवन म बडा महत्त्व होता है। छोटे छोटे इम्तहानो को पास करके लगता है जैसे हम किसी बडे इम्तहान की तयारी कर रहे हो। ऐसा ही कुछ हुआ था किशोर जैनेन्द्र के साथ।

मजिस्ट्रेट स्लेनी ने इन्हें कुर्सी पर बैठन के लिए कहा। अपन बचाव के लिए जैनेन्द्र ने मजिस्ट्रेट से कुछ कहा नही। लक्ष्य यह था भी नही। उन दिनो 'घर बार छोड करके जाएँगे जेलखाना' गीत बहुत प्रसिद्ध था और शान के साथ गाया जाता था। मर्दानो की प्रतिज्ञा थी कि बिना स्वराज्य के हम पीछे नही हटेंगे। मजिस्ट्रेट ने कुर्सी देकर आवभगत चाह जो की हो पर जनेन्द्र को नागपुर सेण्ट्रल जेल भेज दिया गया। उस समय कैदी की उम्र थी साढे सत्तरह साल।

इन बातो की रील अतीत के अटेरन मे लिपट चुकी है। पीछे की ओर वडे ध्यान से देखते हैं जनेन्द्र। उन्हे याद आता है जेल का सुपरिन्टेंडेंट। महाराष्ट्र के ब्राह्मण। उसने समझा कि कोई खतरनाक कैदी जेल मे आया है। उसकी इस समझ का आधार क्या था, कहा नही जा सकता। कद काठी, और रूप रग म भी ऐसी कोई बात नही दीखती थी। पर अफसर तो अफसर होता है। उसका तक अकाट्य होता है उसके अनुसार। अपनी समझ के ही आधार पर जेल अधिकारी ने इन्हे तनहाई वाले सेल मे भेज दिया। बहुत तग कोठरी। स्वय से बात करना, स्वय के साथ जीना और स्वय मे ही सिमटे रहना कितना कठिन होता होगा। सजा कोई भी हो अपनी प्रकृति मे वह त्रासद होती ही है।

नागपुर केन्द्रीय कारागार मे जनेन्द्र को तमाम बालटियस मिले। रविशकर महाराज थे, विनोबा थे और कई अन्य प्रसिद्ध नेता थे। बाद म पुलिस से ही पता चला था कि जनेन्द्र का नाम दगाइयो मे था। पटुवा कूटना, रस्सी बुनना मुख्य काम था जेल मे।

पहल से ही काम निश्चित कर दिया जाता था। समय दे देते थे अधिकारी। उसी उतन समय मे वह काम पूरा करना पडता था। इस परिणाम के पीछे भय उतना नही था जितनी कमशीलता थी। कभी कभी पुलिस की त्योरियाँ चढती भी थी पर ऐसा बहुत कम देखा जाता था।

पहनन के लिए जेल का ही कपडा मिलता था। कदी बाकायदे कदी लगता था। ज्वार की रोटी खाने का मिलती थी। दाल साग बहुत घटिया स्तर का। दाल मे तो इतना पानी होता था कि दाल मुश्किल से कहो दीख जाती थी। मोटी मोटी लाल मिर्चों से छौंक लगती थी। इतनी तीती दाल मिलती थी कि

खायी नही जाती थी।

कुछ कैदी नागपुर जेल से होशगावाद जेल भेजे गए। यहाँ भी जैनेन्द्र को डडा बेडी लगा दी गयी। पैर म डडा। दोना पैरो मे साँकल। भगवानदीन, जमनालाल बजाज आदि का यहाँ साथ था। बाहर की पखहीन अफवाह उडकर जेल की मजबूत दीवार भेदकर अदर पहुच जाती थीं। अखबार न देकर जेल अधिकारी सोचते थे कि कैदियो को बाहर की दुनिया का पता नहीं चलेगा।

काम करते समय जेल से मिला चश्मा पहनना पडता था। आँख बचानी पडती थी। इस नयी जेल म भी खाने का वही हाल था। ज्वार की रोटी खायी नही जाती थी। लगभग अस्सी प्रतिशत कैदियो को पेचिश हो गयी थी। इलाज के नाम पर कोई विशेष प्रबंध नही। जीना हो तो जियो, मरना है तो मरो। और फिर जेल जेल है, खाला का घर नही है। कभी ऐसे गुस्ताख फिकरे भी सुनने को मिल जाते थे। कार्यकर्ताओ के सामने बहुत स्पष्ट लक्ष्य था इसलिए राह के काँटे और रोडे पत्थर का कष्ट सह लिया जाता था। कष्ट सहने का भी अपना एक सुख होता है। निष्कामता की भूमिका मे यह ज्यादा सभव है।

होशगावाद जेल मे ज्यादा दिन नही रहे।

रिहाई के बाद एक गुजराती सज्जन ने अपने घर भोजन के लिए बुलाया। भोजन के समय अचार परोसा गया कागज के एक टुकडे पर। जनेन्द्र ने उसे ध्यान से देखा। तब तक पास बैठे व्यक्ति ने कहा— अरे इस कागज के टुकडे पर तो तुम्हारा नाम है। आश्चय हुआ। कागज पर गुजराती मे कुछ छपा था। जैनेन्द्र को याद है। काठियावाड के एक बडे नेता थे अमृतलाल सेठ। उन्होने देशी राज्य का आदोलन चलाया था। किसी साप्ताहिक पत्र मे उन्होने ही रपट लिखी थी। उसी रपट म जैनेन्द्र और सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम था। पत्र गुजराती का था।

जेल म माफी माँगने वालो को अलग ही रखा जाता था। लाहौर मे इश्योरेंस के चेयरमैन थे चमनलाल। माफी वाले खाते मे उनका भी नाम था। जैनेन्द्र ने उन्ही से इस बात का कारण पूछा—'यह क्या है?' जवाब मिला—'मुझसे ज्वार की रोटी नही खायी जाती। सन 1930 मे जब आक्रामक आन्दोलन म हनुमत सहाय अध्यक्ष बने, यही चमनलाल सेक्रेटरी हो गए। जैनेन्द्र ने चमनलाल की शिकायत की। सत्यवती श्रद्धानद की बेटी थी। आदोलन मे बहुत सक्रिय कायकर्ता थी। उन्होने जनेन्द्र से कहा कि ऐसी बात नही कहनी चाहिए। जैनेन्द्र बोले— इसमे छिपाने की क्या बात है।'

जेल तीन बार गए जैनेन्द्र। प्रेमचन्द को जेल जाने का अवसर नही मिला।

कहते थे वह कि जो काम उनसे नही हो सका उसे शिवरानी (प्रेमचद की पत्नी ने पूरा किया। जैनेन्द्र के प्रारभिक जीवन की सक्रियता देखकर आश्चय होता है

अब तक जनेन्द्र का परिचय प्रेमचन्द से हो चुका था। सन् 1929 ई० आसपास की बात होगी। अवारी नाम के एक इजीनियर थे। अखबार म जैन को पढने को मिला कि अवारी ने सशस्त्र सत्याग्रह किया है। खबर पढकर बहु प्रसन्न हुए। मन मे बहुत कुछ उमड घुमड रहा था। विचारो मे खोए जन ने एक लेख लिखा—'देश जाग उठा।' प्रेरणा का मूल स्रोत अवारी का आदोल था। किसी रचनाकार को, मौलिक चिन्तक को कहाँ से क्या प्रेरणा मि जाएगी, कहा नहीं जा सकता। चतुरसेन शास्त्री ने इस पर अपना नोट लगाव माखनलाल चतुर्वेदी को दिया। उस समय तक शास्त्री जी लेखक के रूप प्रतिष्ठित हो चुके थे। चतुर्वेदी जी चतुरसेन के यहाँ टिके थे। वही जैनेन्द्र उनकी भेंट हुई थी। जैनेन्द्र की प्रारभिक रचनाओ मे 'देवी अहिसे' का नाम आता है। इसमे भी अवारी का जिक्र आया है।

लेखन के प्रति अब जनेन्द्र सजग होने लगे थे। इधर-उधर से रचनाओ फरमाइश भी होने लगी थी। सन् 1924 ई० मे दिल्ली मे यूनिटी कान्फ्रेंस थी। यहाँ का माहौल दूषित हो चुका था। अचानक दगे भडके। सबसे ज्य मारकाट हुई सदर बाजार म। वही गली जमादार मे जैनेन्द्र रहते थे। थोडी दूर पर पहाडी धीरज मे किराये के मकान मे बडी बहन सुभद्रा रहती थीं। ग जमादार म थोडी जगह खाली पडी थी। उजाड ही कहिए उसे। पत्थरो बौछार से वहाँ घूर जैसा बन गया। घर मे सोने की उतनी जगह नही थी। ख जगह म खटोला डालकर जैनेन्द्र सोते थे।

रचना ऐसे होती है। वह दिमाग मे उतरती है अचानक। एक रोज खट पर लेटे हुए जनेन्द्र आसमान देख रहे थे। नेपोलियन की याद आयी। विच का समवेत 'स्पर्धा' कहानी का रूप पा गया। अब रचना और जीवन का साथ गया था। जहाँ रहते दोनो साथ रहते। बिना एक के दूसरा सभव भी तो न था। अपने पडोस मे भडके दगे का कारण बतलाते हैं जैनेन्द्र। बाडा हिन्दूराव मुसलमान रहते थे। कसाबपुरा जाने का रास्ता पहाडी धीरज होकर ज था। लोटन चौधरी ने कत्ल के लिए जाती हुई गायें छीन ली थी कसाई से। झगडे का कारण था। छुरेबाजी, लाठी प्रहार, पत्थर, काँच और जाने क्या-क फायरिंग कम हुई पर सारा वातावरण आतक और भय स भर गया। उस स हिंसा के अजगर के मुह से बचना कठिन लगने लगा था। उन्ही दिनो गाधी ने इक्कीस दिनो वाला लम्बा उपवास किया था। इस विषाक्त वातावरण नामल बनाने के लिए यूनिटी कान्फ्रेंस हुई थी। गाधीजी थे वहाँ। डॉ० भगवा

तात्कालिक लाभ यह हुआ कि कालटियरो न बाढ़ मे बहते हुए लोगो के प्राण बचाए थे। द्वेष, घृणा का कूडा-करकट ते ग बहाव मे बह गया। दवी शक्तिया का प्रकोप मनुष्यो मे एका का भाव भर दता है। परस्परता स, सदभाव स जिन्दगी का कल्मष घुल जाता है। यह प्रेमानुभूति भी प्रकृति की देन है। जाने क्या इसे हम भुला देते हैं।

बेकारी की अवधि काटे नही कटती थी। कही भय, कही पीडा और कही हीन भावना रास्ता छेंके थी। लगता था जैस अपने वश म कुछ है ही नही। मन तो देश दुनिया घूम आता है पर तन बेचारा क्या करे। मां भी क्या सोचती होगी। खाली दिमाग शैतान का घर। अहिंसा का रास्ता अच्छा तो है पर क्या इससे अपनी आजादी की समस्या हल हो जाएगी। एक ऊहापोह, अनिश्चितता और अविश्वास की स्थिति। पर ऐसे तो काम नही बनेगा। बेकारी की हालत मे लायब्रेरी जाने लगे जैनेन्द्र। मारवाडी पुस्तकालय मे दर तक बैठते। जो भी सामन आता पढ लेते। कोई चुनाव नही और विशिष्ट के प्रति कोई रुचि भी नही। मां की इच्छा थी कि उसका बेटा काम करे। बेटे के सामने समस्या थी कि काम करे तो कौन सा करे।

यद्यपि गाधी जी की काय शली को पसद करते हैं जैनेन्द्र पर अब धीरे धीरे काग्रेस म काम करने की सक्रियता सिमटने लगी थी। उन्ही दिनो अयोध्याप्रसाद गोयलीय जैनियो का प्रचार करते थे। उनसे थोडा बहुत परिचय था। जैन सगठन सभा उन्होने ही बनायी थी। धार्मिक मान्यताओ के प्रति जैनेन्द्र के मन मे कोई आग्रह नही था। मां कट्टर जैन थी। मामा स्वतन्त्र विचारो के थे इसीलिए उन्हे हस्तिनापुर आश्रम छोडना पडा था।

बेकारी की हालत मे नौकरी खोजते हुए जैनेन्द्र कलकत्ते पहुँचे। वहा से बनारसीदास चतुर्वेदी के सपादन मे विशाल भारत' निकलता था। उस समय का प्रतिष्ठित पत्र था। हुआ यह कि चतुर्वेदी जी ने पत्र लिखकर इन्हें बुलाया था। कोई कारण रहा होगा। ये कुछ बाद मे पहुँचे। जिस नौकरी के लिए इन्हें बुलाया गया था, वह ब्रजमोहन गुप्त को दे दी गयी थी। जैनेन्द्र तो समय से वहां पहुँचे ही नही। पुन भटकाव का रास्ता। प्रतीत होता था भटकाव जीवन का पर्याय ही बन गया है।

डिपुटीमल जैन से थोडा परिचय था। कालीचरण के लिए नौकरी की सिफारिश जनेन्द्र ने की थी। काम बन गया था। डिपुटीमल जन की सदाशयता स कालीचरण जैन तो मडी के स्कूल मे हेडमास्टर हो गए थे। क्योंकि एक काम बन गया था इसलिए अपनी नौकरी के लिए भी उन सदाशय महाशय से कहने की हिम्मत बांधी गयी। कलकत्ते जाते समय मां न थोडे पैस दिए थे पर वे कितने दिन तक चलते।

रामचन्द्र शर्मा का 'महारथी' प्रेस था। बाद में तो इसी नाम से एक पत्र भी निकला। प्रेस में डिस्पच क्लर्क की नौकरी पक्की हुई। बीच में ट्रेनिंग के लिए सात रोज आने की ताकीद पायी। नौकरी सत्तर रुपये मासिक की थी। किसी प्रकार पहला महीना बीता। दीवाली आयी। तश्तरी में खील-बताशे देते हुए मालिक ने कहा था, कि 'यह तो सेवा का,काम है।' सत्तर में बीस 'महारथी' को दे दें। जैनेन्द्र ने कहा बीस ही क्यों पूरा भी दिया जा सकता है। 'महारथी' मासिक था। रामचन्द्र शर्मा स्काउट थे। पत्र कोई विशेष नहीं था—ऐसा जैनेन्द्र मानते हैं। कभी 'चाँद' के एडीटर नंदकिशोर तिवारी भी 'महारथी' के सम्पादक हुआ करते थे। जैनेन्द्र जिस मारवाड़ी पुस्तकालय में बैठते थे उसमें 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' होती थी। इन्हें लिखने का विशेष चाव वहीं से बढ़ा था। सभा में इनका जाना हुआ करता था। इसी सभा में एक बार अपनी कहानी 'खोज' सुनायी थी। वहाँ चन्द्रशेखर शास्त्री नाम के साहित्यिक सज्जन बैठे थे। कहानी में अंत में आया 'ये ऊँचे ऊँचे दिग्गज पेड़'—संकेत उन्हीं की ओर था। चतुरसेन शास्त्री कहाँ चूकने वाले थे। व्यंग्य का कोई बाण कान तक तान कर छोड़ दिया। उसी समय जैनेन्द्र ने चन्द्रशेखर शास्त्री के लिए नया नाम सुझाया 'एस क्यूब'। चन्द्र का अर्थ हुआ शशि। शेखर और शास्त्री के मिलने पर तीन एस हो गए। और साथ में इतना इजाफा और हुआ कि 'एश' अंग्रेजी में गधे को कहते हैं।

स्मृतियों के पन्ने पलट रहे हैं। सभी पर कुछ न कुछ लिखा है।

कोरा पन्ना शायद ही कोई हो। होगा भी तो उसका भी कोई अर्थ होगा। मौन की वाणी भी तो अर्थवती होती है। 'महारथी' से बावन रुपये का चैक आया। एक महीने का वेतन था यह। बीस तो दानखाते में चले ही गए थे। चैक खाते में जमा तो कर दिया गया पर वह पैसा लेखक के पास नहीं आ सका। समय की यह भी एक चाल है। टेढ़ा ही जाता है। तब तो और टेढ़ा चलता है आप जब उससे सीधे चलने की उम्मीद रखते हों। 'महारथी' की नौकरी छोड़ दी। मन में आया कि इस पत्र के लिए कुछ लिखा जाए। एक रचना संपादक महोदय बहुत दिनों तक रखे रहे, छापी ही नहीं। दफ्तर जाकर न छपने का कारण पूछा। पता चला कि संपादक संशोधित रचना छापना चाहते थे। जैनेन्द्र का उत्तर था—' मैं तो इतना शुद्ध हूँ नहीं, कैसे छपेगी।" 'दूसरी रचना दो तो यह ले जा सकते हो'—संपादक का उत्तर था। ले आए थे वह रचना। उसके बाद 'महारथी' को स्पर्धा कहानी दी थी।

चलते चलाते फतेहपुरी में ऋषभचरण जैन मिल गए। जैनेन्द्र से कहने लगे—'तुम्हारी जेब फूली है।' जनेन्द्र ने बतलाया—'कहानी लिखी है।' बात आगे बढ़ने पर ऋषभचरण जैन से कहा—'मुझे पाँच रुपये की जरूरत है। क्या 'महारथी' से माँगूँ?' 'माँग सकते हो'—ऋषभचरण ने कहा। संपादक ने जैनेन्द्र से कहानी

का तकाजा किया। इन्होंने कहा—'लाए तो हैं पर पाँच रुपये चाहिए।' रुपये मिले नहीं। कहानी लेकर वापस आ गए। यही कहानी (स्पर्धा) प्रेमचन्द को भेजी गई। अपने कार्यालय को उन्होंने नोट लिखा— प्लीज आस्क ह्विदर इट इज ट्रांसलेशन और नाट ?' लेखक ने सोचा—'कुछ आगे बढ रहा हूँ क्योंकि कहानी अनुवाद समझकर वापस की गयी है। सन 1927 समाप्त होने को था।

जैनेन्द्र के जीवन म सन 1929 विशेष महत्त्व का वर्ष है। यहाँ से उनका व्यक्ति और लेखक एक नये मोड की ओर चलते हैं। 'परख' उपन्यास का लेखन और जैनेन्द्र का विवाह इसी वर्ष की देन हैं। 'परख' हिन्दी प्रचारिणी सभा म सुनायी जा चुकी थी। उसकी नायिका की चर्चा चली तो जैनेन्द्र ने माना, कि 'हाँ वह उपन्यास 'अफेयर' पर आधारित है। वह सम्बन्ध तो हुआ ही नही। लेखक ने 'परख' लिखकर हृदय का भार हल्का किया।

मुजफ्फरपुर के निवासी थे उग्रसेन जैन। महात्मा जी मे उनकी घनिष्ठता थी। अपने साथी विश्वम्भर सहाय को साथ लेकर जैनेन्द्र की माँ के पास उग्रसेन जैन गए थे। इन असहयोग वालो का अपना एक ग्रुप था। विश्वम्भर सहाय की लडकी का विवाह जैनेन्द्र के साथ करने के लिए उग्रसेन ने माँ के सामने प्रस्ताव रखा। यह भी कहा, कि 'तुम करो नहीं तो मैं अपनी बेटी की शादी करूँगा।' उस समय पहाडी धीरज पर ही रहना होता था। माँ ने रिश्ता मान लिया। उसन बेटे से कहा, कि 'जाकर लडकी देख आओ'। जनेन्द्र ने मना कर दिया। वे सन 1928 के दिसम्बर मे कलकत्ता काग्रेस से लौटे थे। तभी शादी का कायक्रम बना। मा गाँव जाकर होन वाली बहू देख आया। शादी स पूव महात्मा जी भी विश्वम्भर सहाय के यहाँ हो आए थे। मुजफ्फरनगर म बाद मे विश्वम्भर सहाय ने प्रेस लगा लिया था।

अनोखा विवाह हुआ था जैनेन्द्र का।

बरातियो की सख्या कुल पाच की थी। मामा महात्मा भगवानदीन, चतुरसेन शास्त्री, प० सुन्दरलाल, माँ की सहेली का लडका मुलतान और दूल्हा स्वय जैनेन्द्र। धमडम धमडम, ढैयम ढैयम कुछ नहीं हुआ। तीसरे दर्जे के पाच ट्रेन-टिकट खरीदे गए। सिर पर पाग नही, नये कपडे नही। उस समय की यह सादगी चर्चा का विषय बनी। यहाँ तो सचमुच सादगी व्यवहार म उतर आयी थी। शादी के समय पडित नही हवन नहीं, अग्नि नही। इतना ही नही, बहू के लिए कोई जेवर नही, साडी नहीं। हाँ ससुराल आने पर भेंट मे दिया गया था कुछ। हिन्दुस्तान का नक्शा जमीन पर बनाया गया था। उसी की वर वधू ने तीन बार प्रदक्षिणा की। शादी हो गई। कुल खच साढे सत्तरह रुपये। ऐसी शादी सुनकर मुझे आश्चय होता है। जनेन्द्र कहते हैं, 'मुझे तो कोई मलाल शिकायत थी नहीं। माँ और मामा जसे चाहते थे, हो गया। इस चाहने से मरा चाहना अलग नहीं

था'। शादी के डेढ़ महीने बाद गौना हुआ। पत्नी (भगवती) के साथ जनेन्द्र ट्रेन से दिल्ली आ रहे थे। स्टेशन से पहले ट्रेन से कोई आदमी कट गया। अधमरे व्यक्ति को उठाकर लोगों ने गाड़ी में रखा। वह व्यक्ति चिल्लाया—'अरे मेरी टाँग'। टाँग कट गयी थी। लोगों ने उसकी टाँग उठाकर उस दी। एक करुणापूर्ण दृश्य। बाद में शायद जैनेन्द्र ने इस घटना को अपनी किसी कहानी में उतारा था।

समय बदला। जैनेन्द्र ने अपनी बड़ी बेटी कुसुम की शादी बड़ी धूमधाम से की थी। लालबहादुर शास्त्री, जगजीवन राम और राधाकृष्णन आदि शामिल हुए थे। चतुरसेन शास्त्री ने व्यंग्य में लिखा था कि 'उपहार देने की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी'। ईश्वर, स्त्री और पैसा—इन तीनों बिन्दुओं पर जनेन्द्र ने पराजय स्वीकार की थी। जो मत आरोपित थे, वे जीवन प्रवाह की स्वीकृति में बह गए। गौने के बाद प्रायः दिल्ली रहे जैनेन्द्र और आंदोलनों में भाग लेते रहे। धीरे धीरे यह विश्वास दृढ़ होता रहा कि राजनीति बातें ज्यादा करती है, काम कम। इसीलिए पार्टीवाद भी जनमता है। कम में बात करने का मौका ही नहीं मिलता। लक्ष्य इसलिए एक ही रह जाता है। वहाँ कोई वर्ग, जाति और वर्ण नहीं बच पाता है।

कलकत्ता कांग्रेस में जेनेन्द्र माखनलाल चतुर्वेदी से मिले। कहने लगे चतुर्वेदी जी—'क्या हुआ ? तुम्हें दिखाकर लोगों से कहता था कि कुछ बुद्धू लड़कों में कोई संभावना नहीं होती। तुम तो लेखक निकले।' जैनेन्द्र कहते हैं, कि 'यह वाक्य मेरे लिए उत्साहवर्धक ही नहीं था बल्कि आशीर्वाद भी था। 'फाँसी' नाम का कहानी संकलन लाहौर कांग्रेस के समय हाथों हाथ बिक गया। वहाँ फाँसी' संकलन क्रांतिकारियों के देखने में आया। नाम बढ़ गया। वात्स्यायन आदि उसी से सम्पर्क में आए। 'त्यागभूमि' को भी प्रसिद्धि कम नहीं मिली। इन्हीं दिनों 'परख' को हिंदुस्तानी एकेडेमी ने पुरस्कृत किया था। इस पुस्तक पर चतुरसेन शास्त्री की प्रतिक्रिया थी, कि 'जनेन्द्र छींकते भी हैं तो कहानी बन जाती है'।

आंदोलन एवं लेखन साथ साथ चल रहे थे। सन् 1930 में बवाना गाँव में भाषण देते हुए जनेन्द्र को गिरफ्तार कर लिया गया था। भाषण का विषय था 'जागरण'। सीधे सीधे अंग्रेजों की खिलाफत थी हथकड़ी नहीं डाली गयी। जेल में ही 'परख' की प्रति पहुँचायी गयी थी। माँ और उनके आश्रम की लड़कियों ने साथ दिया। उनमें से एकाध उस समय पकड़ी भी गयी थी। पर माँ तो माँ होती है। उसे बेटे का जेल जाना अच्छा नहीं लगा। बहू को लेकर वे जेल जा पहुँची। बहू की आयु उस समय केवल सत्तरह वर्ष थी। कनस्तर भर कर लड्डू जेल ले गयी थीं। वहाँ बाँटे गए थे। बहू नयी आयी थी। क्या प्रतिक्रिया व्यक्त करती। हाँ, उसे यह जेल यात्रा अच्छी नहीं लगी होगी—ऐसा अनुमान जनेन्द्र लगाते हैं।

एक बार होली अक (आज) में उग्र न गधे की खाल बिछायी और उस पर जैनेन्द्र को बैठाया। नीचे नाम लिखा—महात्मा जैनेन्द्र कुमार। कलकत्ते में जैनेन्द्र अपने आश्रम के साथी नृपेन्द्र के साथ जा रहे थे। रास्ते मे उग्र से भेंट हो गयी। नृपन्द्र ने कहा—'मतवाला' के सपादक हैं। 'मतवाला' मे काम करने वाले एक व्यक्ति ने चिट्ठी दी थी। क्या नाम था, किसके नाम चिट्ठी थी, पता नही। दफ्तर जाकर जैनेन्द्र न कहा—'आपके नाम खत था, भूल आया।' 'दिमाग खराब है। तुम सब कुछ भूल ही आए हो तो आए किस लिए? कहानी सुनाना चाहता हूँ। चलो ऊपर सुनते हैं।' 'फाँसी' कहानी सुनायी तो उग्र बोले—'बिना आलोचक की परवाह किए लिखते जाओ। अजमेर से हरिभाऊ उपाध्याय 'त्यागभूमि' पत्र निकालते थे। पहली बार 'फाँसी' उसी म छपी थी। प्रेमचन्द ने बधाई भेजी थी। उग्र के सपादकत्व मे 'अपना अपना भाग्य' छपी थी लेखक द्वय के नाम से। कहते हैं जैनेन्द्र कि 'ऋषभ को ही कहानी दी थी मैंने। कहानी में अभी भी उग्र की भाषा झलक मारती है।

हर रचना के पीछे एक प्रेरणा होती है। इसी प्रेरणा के सहारे रचनाकार एक वितान तानता है। यह वितान लगता तो काल्पनिक है पर उसका ताना-बाना असलियत का ही होता है।

'सुनीता' और 'कल्याणी' आदि रचनाए इसी प्रकार की हैं? 'विवर्त' प्रकाशित होने पर तो जैनेन्द्र के लेखन गुरु चतुरसेन शास्त्री ने कहा था—क्या ऊटपटाग लिखा है?' उन्हें इस बात का पता था कि प्रेमचद 'परख' की समीक्षा हस में लिख चुके हैं।

उडिया की एक कवयित्री थी कुन्तला कुमारी। उनका विवाह दिल्ली मे हुआ था। जैनेन्द्र के घर आनी जाती थी। रोमैंटिक स्वभाव की महिला थी। डाक्टर थी कुन्तला। पति भी डाक्टर थे, आय समाज के प्रचारक थे। उनके प्रति कुन्तला के मन मे श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह शादी से पहले क्रिश्चियन हो गयी थी। दिल्ली मे आय समाजी रीति से हिन्दू बनी फिर विवाह हुआ। अकाल मौत हुई थी कुन्तला की। केवल तीस की उम्र थी उनकी। सन् 1955 के आसपास वे दिवगत हुई थी। कुन्तला को उडीसा मे 'उत्कल भारती' कहा जाता है पर वे 'भारत भारती' बनने का सपना पाले थी। ब्राह्मण थी। पहले एक अध्यापक से प्रेम करती थी जिसे सबोधित करके अनेक कविताएँ लिखी थीं, जिन्हे लोग रहस्यवादी समझते थे। जिस 'ब्रह्मचारी' स उन्होने शादी की वह बाद में शराबी हो गया। कुन्तला से पैसे ऐंठन लगा। न मिलने पर उन्हें पीटता भी था। कुन्तला के धर्मपुत्र डॉ० कुजविहारीदास ने उनकी जीवनी लिखी है। यही कुन्तला 'कल्याणी' उपन्यास की नायिका हैं।

सुनीता और प्रेमचन्द के 'गोदान' का प्रकाशन वष एक ही है सन् 1936।

'सुनीता' के आदर्श को प्रेमचन्द ने सराहा था। बोलकर उपन्यास कहानी लिखाने का क्रम 'सुनीता' से ही शुरू हुआ था। बाद की सारी रचनाएँ इसी प्रक्रिया से गुजरी हैं। इस उपन्यास को तो ऋषभचरण जैन ने अपनी सिने पत्रिका 'चित्रपट' के लिए लिखवाया था। प्रेस का आदमी आता था। रोज उपन्यास का अश लिख ले जाता था। छोटे मोटे कामो से मिला पैसा खर्च के लिए पर्याप्त नही था। माँ के ऊपर परिवार का बोझ था ही। बडी ग्लानि होती थी। कभी-कभी तो आत्महत्या करने का मन होता था। यह विचार प्रतिफलित होता, इससे पूर्व ही माँ का ध्यान होने के कारण मन वापस भी हो जाता था। आत्महत्या एक कायरतापूर्ण सोच है। इस सोच के लिए भी जिस हिम्मत और दृढ निश्चय की जरूरत होती है, वह यहाँ नही थी।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बनने की बात आयी। हरद्वारी लाल और सरूप सिंह जैनेन्द्र के पास गए थे। प्रस्ताव रखा कि यदि जैनेन्द्र अध्यक्ष होना स्वीकार कर लें तो वात्स्यायन को रीडर बना दिया जाए। उत्तर था जैनेन्द्र का, कि 'यदि कोर्स आदि की सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व मुझे सौंपा जाए तो सोचा जा सकता है।' कोठारी ने भी कहा। जैनेन्द्र मान गए। उस समय गाडगिल के पिता चडीगढ मे गवर्नर थे। उनसे मिलने गए जनेन्द्र। वहाँ वचन मिला कि यदि जैनेन्द्र कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय को विशिष्ट सस्था बनाते हैं तो इन्हें एक करोड रुपए दिए जा सकते हैं। यह कह कर स्वीकृति दे दी कि तुम्हारे पत्र की भाषा पर निर्भर करता है। अज्ञेय भी रीडर बनने के लिए मान गए। जैनेन्द्र बेटी (कुमुद) की बीमारी मे बम्बई गए थे। वही नियुक्ति का पत्र मिला। पत्र की भाषा रुची नही। सो वही से तार दे दिया कि स्वीकृति वापस लेता हूँ। वेतन भी ज्यादा देने के लिए तैयार थे यूनिवर्सिटी वाले पर जैनेन्द्र गए नही और फिर अज्ञय ने भी मना कर दिया।

सन् 1950 51 मे अपना प्रकाशन 'पूर्वोदय' शुरू किया गया। बडे बेटे (दिलीप) ने इण्टरमीडिएट से पढाई छोड दी थी। बाद मे एम० ए०, एल एल० बी० किया। मातण्ड उपाध्याय की सलाह पर प्रकाशन की बात सामने आयी थी। दो पुस्तकें छपी और पैसा खत्म। काफी दिनों के बाद एक अधूरा उपन्यास (सुखदा) दिलीप ने धर्मयुग मे छपवाया। यह धारावाहिक छपने के लिए ही लिखा गया था। दिलीप ने ही कुछ नोट्स भी लिए थे। तेरह साल बाद 'सुखदा' का प्रकाशन हुआ था। पत्नी (भगवती) को भी रहता था कि क्या हो। मन मे आया कि यह पुस्तक बेच कर पैसा दिलीप को दे दिया जाए। पन्द्रह हजार जैनेन्द्र चाहते थे। सात-आठ पर बात पट सकती थी। एक मित्र के यहाँ प्रेस का काम देखकर कलकत्ते से दिलीप तीन हजार रुपये लाए और सुखदा' प्रेस मे दे दी गयी थी। दिलीप का मन उचट गया। कहा कि लाया हुआ वापस करता हूँ। चार सौ

पत्नी और प्रेयसी का विवाद तूल पकड़े है। जैनेन्द्र अपनी बात पर अडिग हैं। संस्थाएँ बनायी जा रही हैं। अकादमियाँ पुरस्कार दे रही हैं। 'त्यागपत्र' पर फिल्म बनकर आ गयी है। अज्ञेय ने 'त्यागपत्र' का अनुवाद अंग्रेजी में कर दिया है। यात्रा-वृत्त लिखा जा रहा है। राष्ट्रपति ने 'पद्म भूषण' प्रदान किया है। मानद उपाधियों का ढेर लग गया है। संयोजन और अध्यक्षता के कामों से फुर्सत नहीं मिल रही है। अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के एक लाख रुपये के पुरस्कार को जनेन्द्र ने समिति के कार्यों के लिए वापस कर दिया है। अपने लेखन के सम्बंध में उठे विवादों को झेल रहे हैं जनेन्द्र निस्संग भाव से जैसे कुछ हुआ ही न हो।

इतना ही नहीं, अपनी लोकप्रियता पर उन्हें कोई अहंकार नहीं है। वे स्विटजरलैण्ड रूस, चीन, लंका, जापान और अमरिका की यात्राएँ कर रहे हैं। वरन् यनेश की वैतरणी पार कर रहे हैं। उनकी दुनिया अब बहुत बड़ी हो गयी है। उसी के अनुसार उनके बड़प्पन का मान भी बढ़ा है।

मैथिलीशरण गुप्त की जन्म शताब्दी का वर्ष था।

द्रोणाचार्य कालेज गुड़गाँव में गुप्त जी के काव्य पर बोलने गए थे। बोलते समय ही पक्षाघात का आक्रमण हुआ। तुरन्त दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भर्ती कराया गया। शरीर शिथिल हो चला। आधे अंग ने सक्रियता छोड़ दी। मुखर वाणी हमेशा के लिए मौन हो गयी। तीसरे दिन मैंने कागज पर कुछ लिखवाने के लिए उनके हाथ में अपना कलम दिया तो चाव से लिखने लगे। पर बना क्या? लगा कि जैसे कागज पर अपने असंख्य पैरों में स्याही लगाकर कोई गोजर निकल गया हो। लकीरों को काटती हुई लकीरें केंचुए की भाँति कागज पर फैल गयी थीं। यानी घुणाक्षर न्याय भी नहीं हो पाया।

दरियागंज से ओखला चले गए। ह्वील चेयर आ गयी। वाणीहीन जैनेन्द्र की अशक्तता बढ़ती गयी। भारती नगर में सरकार ने आवास का प्रबंध कर दिया। आयुर्विज्ञान संस्थान के डाक्टर परिवार वालों को दिलासा देते रहे। प्रदीप और विनीता ने सेवा और दौड़ धूप में कोई कसर नहीं उठा रखी। अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में बेड पर पड़े हुए जनेन्द्र को देखता था और देखता था तीमारदारी का संकल्प तो उनका वाक्य बार-बार याद आता था—'बहू मेरा बड़ा खयाल रखती है।'

दवा, देखभाल और शुश्रूषा। यह तो रोज का काम हो गया। कोई मिलने आता है तो उसे पहचानने की कोशिश करते हैं। संकेत से आग्रह करते हैं कि वह बैठे और बैठे। आगन्तुक के लिए चाय पानी में देर हुई तो विचलित हो रहे हैं जनेन्द्र। आवाज निकलती है पर आने वाले को वह अर्थहीन लगती है। प्रदीप,

खर्च हो चुका था। जैनेन्द्र ने पूरा वापस करवाया। फिल्म के शौक मे दिलीप बवई चले गए। जैनेन्द्र के लिए यह असमजस का समय था। माँ तो सन् 40 से पूर्व ही चल बसी थी। उन्होने चलते समय बेटे से कुछ कहा भी नही। सोल सेलिंग एजेंसी के लिए सभी तैयार हो गए। नतीजा उलटा आया। जिन्होंने माल उठाया था उनके चेक भुने ही नही। दिलीप का काम बम्बई मे जमा नही। उन्हे वापस लाने बम्बई गए जनेन्द्र। साथ लेकर वापस आए। प्रकाशन का हाल देखकर दूकान पर बैठने लगे।

जैनेन्द्र ने 'सर्वोन्य' लेख लिखा था। जहाँ मनुष्य की कमी है वहाँ मशीन ज्यादा है। सर्वोदय के लिए पूर्वोदय आवश्यक है। पूर्व मे मनुष्य ज्यादा हैं इसलिए उदय वहाँ होना चाहिए। 'पूर्वोदय' इस प्रकार सभी के सामने आया। 'दशार्क' उपन्यास दिलीप ने ही शुरू किया था। अधूरा छोड कर व सदव के लिए चले गए थे। बाद मे वह छोटे बेटे (प्रदीप कुमार) द्वारा पूरा और प्रकाशित किया गया। जनेन्द्र की अंतिम कृति है 'दशार्क'। उनके देखने का दृष्टिकोण आम लोगो से भिन्न रहा है। दिल और दिमाग की समा तर शक्तियो मे दिल का पलडा भारी होना चाहिए जबकि ऐसा हुआ नही है। हृदय की कीमत पर दिमाग काम कर रहा है। समस्या व्यक्तित्व के विघटन की है। दिल सूख रहा है, दिमाग स्फीत हो रहा है।

'समय और हम', 'समय समस्या और सिद्धान्त' मे प्रश्नो से घिरे हैं, जैनेन्द्र। माकूल जवाब देकर वे बडी आसानी से बाहर आ जाते हैं। प्रश्नकर्ताओ के कारण ये ग्रथ बडे हो गए हैं। सोच का क्रम जारी रहता है निरतर। सुधियो की रील एक पुली मे निकल कर दूसरी मे लिपट रही है।

जने द्र अपने घर पर प्रेमचन्द का स्वागत कर रहे हैं। जनेन्द्र उनसे मिलने लखनऊ जा रहे हैं। उनकी मत्यु मे पूर्व बनारस मे पास बैठ कर सियारामशरण गुप्त को पत्र लिख रहे हैं, कि 'सियाराम, कोई भी खबर सुनने के लिए तुम तयार रहो। अन्त करीब है।' अपनी घरेलू समस्याओ मे अकेले ही जूझ रहे हैं। अब तो माँ और मामा का सहारा भी नही है। निपट अकेले हैं जैने द्र। बडा बेटा भी साथ छोडकर चला गया है। दबाव डालने पर भी उसने अपना विवाह नही किया। बेटियो के विवाह का जुगाड कर रहे हैं जने द्र। छोटे बेटे की होने वाली बहू (विनीता) से इण्टरव्यू लिया जा रहा है। यह सिलसिला लम्बा है।

साहित्य जगत से अनुकूल प्रतिकूल और विचार आ रहे हैं जैनेन्द्र के बारे मे। अपनी मत्यु के बारे मे सोच रहे हैं जैनेन्द्र। वे अपनी पत्नी की मत्यु पर गुमसुम हो गए हैं। शोक प्रकट करने वालो का ताता लगा है। सभी मे आप बीती बतला रहे हैं। पुत्रवधू की तारीफ दिल खोलकर कर रहे है। पर प्रकृतिस्थ हो गए हैं।

पत्नी और प्रेयसी का विवाद तूल पकडे है। जैनेन्द्र अपनी बात पर अडिग हैं। सस्थाएँ बनायी जा रही हैं। अकादमियाँ पुरस्कार दे रही हैं। 'त्यागपत्र' पर फिल्म बनकर आ गयी है। अज्ञेय ने 'त्यागपत्र' का अनुवाद अग्रेजी म कर दिया है। यात्रा वत्त लिखा जा रहा है। राष्ट्रपति ने 'पदम भूषण' प्रदान किया है। मानद उपाधियो का ढेर लग गया है। सयोजन और अध्यक्षता के कामो से फुसत नही मिल रही है। अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के एक लाख रुपये के पुरस्कार को जैनेन्द्र ने समिति के कार्यों के लिए वापस कर दिया है। अपने लेखक के सम्बध मे उठे विवादो को झेल रहे हैं जनेन्द्र निस्सग भाव से जैस कुछ हुआ ही न हो।

इतना ही नही, अपनी लोकप्रियता पर उन्हें कोई अहकार नही है। वे स्विटजरलैण्ड, रूस चीन, लका जापान और अमेरिका की यात्राएँ कर रहे हैं। घरेलू क्लेश की वैतरणी पार कर रहे हैं। उनकी दुनिया अब बहुत बडी हो गयी है। उसी के अनुसार उनके बडप्पन का मान भी बढा है।

मैथिलीशरण गुप्त की जन्म शताब्दी का वष था।

द्रोणाचाय कालेज गुडगाँव मे गुप्त जी के काव्य पर बोलने गए थे। बोलते समय ही पक्षाघात का आक्रमण हुआ। तुरन्त दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान सस्थान मे भर्ती कराया गया। शरीर शिथिल हो चला। आधे अग ने सक्रियता छोड दी। मुखर वाणी हमेशा के लिए मौन हो गयी। तीसरे दिन मैंने कागज पर कुछ लिखवाने के लिए उनके हाथ मे अपना कलम दिया तो चाव से लिखने लगे। पर बना क्या? लगा कि जसे कागज पर अपने असख्य परो मे स्याही लगाकर कोई गोजर निकल गया हो। लकीरो को काटती हुई लकीरें केचुए की भाँति कागज पर फल गयी थीं। यानी घुणाक्षर न्याय भी नही हो पाया।

दरियागज से ओखला चले गए। व्हील चेयर आ गयी। वाणीहीन जैनेन्द्र की अशक्तता बढती गयी। भारती नगर मे सरकार ने आवास का प्रबध कर दिया। आयुर्विज्ञान सस्थान के डाक्टर परिवार वालो को दिलासा देते रहे। प्रदीप और विनीता ने सेवा और दौड धूप मे कोई कसर नही उठा रखी। अस्पताल के प्राइवेट वाड मे बेड पर पडे हुए जैनेन्द्र को देखता था और देखता था तीमारदारी का सकल्प तो उनका वाक्य बार बार याद आता था—'बहू मेरा बडा खयाल रखती है।'

दवा देखभाल और शुश्रूषा। यह तो राज का काम हो गया। कोई मिलने आता है तो उसे पहचानने की कोशिश करते हैं। सकेत से आग्रह करते हैं कि वह बठे और बैठे। आगन्तुक के लिए चाय पानी म देर हुई तो विचलित हो रहे हैं जैनेन्द्र। आवाज निकलती है पर आने वाले को वह अथहीन लगती है। प्रदीप,

विनीता और दूसरे पारिवारिक समझते हैं उसका अर्थ। परिचित व्यक्ति की ओर आँख गड़ा देते हैं। उसका हाथ पकड़ कर दबाते हैं। एक असहाय स्थिति उभरती है। माहौल निरुपायता और करुण भावना से भर जाता है। दिनोदिन स्वास्थ्य गिर रहा है। अशक्त जैनेन्द्र की जिजीविषा संघर्ष कर रही है। समय थम गया है।

जैनेन्द्र के साहित्य पर विचार-गोष्ठी हुई उन्हीं के आवास पर। काफी लोग आए। विचार विमर्श हुआ। उन्हें गोष्ठी में बिठाया गया। चुपचाप सारा दृश्य देखते रहे। ज्यादा देर बैठा नहीं गया। बेडरूम में ले जाया गया उन्हें। गोष्ठियों में घंटों बैठे रहते थे कभी पर अब तो संभव नहीं है।

लोग जिन्दगी जीते हैं पर जैनेन्द्र ने तो साहित्य जिया है, अपना चिन्तन जिया है।

जिन्दगी तो उनकी जिन्दगी में थी नहीं कदाचित्।

लेखन और चिन्तन उनका कर्म था। कर्म ही उनके जीवन का पर्याय था।

तेईस दिसम्बर 88 की रात को प्रदीप ने बतलाया था, कि 'बाबूजी की तबीयत कुछ खराब है।' किसी को क्या पता कि तैयारी हो रही है जाने की। और चौबीस को सबेरे चार बजे मेला खत्म हो गया। अपनी काल्पनिक मौत पर कई साल पहले जैनेन्द्र ने लिखा था—और शांति की उसे जरूरत हो आयी थी। वह परेशान रहने लगा था। काजी को पहले शहर का अंदेशा हुआ करता था। लेकिन अदब आगे बढ़ गया है और शहर छोटी चीज बनकर रह गया है। जैनेन्द्र दुनिया के अंदेसे से परेशान था। परेशानी उसकी पेशानी की लकीरों में, बेहाल हाल में, यहाँ तक कि लिबास में भी दीखती थी। इस तरह उसकी खुद की तरफ से शायद कहा जा सके कि उसका मरना बुरा या समय से पहले नहीं हुआ।' रचनाकार भविष्य द्रष्टा होता है। उसकी वाणी में अनजाने ही सत्य उतर आता है।

चौबीस को प्रात आवास पर बड़ी भीड़ थी। उदास चेहरे, डबडबायी आँखें, माहौल में घुली चुप्पी। अंतिम दर्शन के लिए आने वालों का तांता लगा था। साहित्यकार, रंगकर्मी, विद्वान, सामान्य जन, पारिवारिक, राजनेता, अफसर सभी आए श्रद्धांजलि अर्पित करने। राष्ट्रपति की ओर फूलमाला आयी। यदि मौन श्रद्धांजलि के फूल संभव हैं तो ऐसे फूलों की संख्या बहुत ज्यादा थी। साढ़े तीन बजते ही लाशगाड़ी में अर्थी रखी जाने लगी। मैंने भी कंधा दिया। आत्मीयों के बीच से निकल कर लाशगाड़ी विद्युत शवदाह स्थल की ओर जाने के लिए आगे बढ़ गयी।

उसी दिन रात को दस बजे। मैं अपनी लिखने की मेज पर बैठा हूँ। प्रदीप के नाम कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ—प्रिय भाई, बाबूजी के दाह संस्कार से लौटे

कुछ देर हो गयी है। रात काफी गहरा गयी है। सन्नाटा है। नीद नही आ रही है। आप भी अनुमानत जाग रहे हैं। विनीता जी भी सोई नही होगी। कल की रात तो जागते हुए ही बीती थी। रात साढे दस पर टेलीफान पर बात हुई थी तो आपने कहा था—'आज बाबूजी की तबीयत कुछ खराब है पर परेशान होने की बात नही है।' समय की चाल सीधी कहाँ होती है!! बाबूजी रचनाकार थे, चितक थे और असाधारण प्रतिभा वाले एक साधारण मानव थे। उनके चितन मे सामान्य की पक्षधरता थी पर विशिष्ट के विरोधी वे नही थे।

*मुझे उनके साथ बैठने का, विचार करने का जो अवसर मिला है उसे प्रकृति* की देन ही मानता हूँ। दिसम्बर-जनवरी का जाडा, दिल्ली का घना कुहरा, काँपती सडको को हैरान करती गाडियाँ। वाणी विहार से सवेरे सवेरे दरियागज पहुँचना बहुत आसान नही था। पर वहाँ पहुँचकर देखता कि बाबूजी प्रतीक्षा कर रहे हैं और फिर बातो का लम्बा सिलसिला। विनीता जी गवाह हैं।

मेरे दिमाग मे अतीत की एक नदी बह रही है।

सीपियाँ हैं। शैवाल हैं, दोनो तट हैं, प्रवाह है, भँवर है, छोटी बडी मछलियाँ हैं। साथ ही इन मछलियो की जिजीविषा है, अनत जिजीविषा।

आज इस नदी के मुहाने से वापस आया हूँ। बाबू जी के साथ हमारा वर्तमान अतीत बन गया है।

कितना मोहक होता है अतीत। आज कितना तो त्रासद है वतमान। एक ही पन्ने के दो पृष्ठ। एक अत्यन्त चिकना, दूसरा खुरदरा। 'दशार्क' की प्रति पर हस्ताक्षर करके देते हुए उन्होने मुझसे कहा था—'पढना'। पढ़ लेने के बाद कुछ जिज्ञासा प्रकट की तो कहने लगे, कि जिन्दगी के कई रेशे इतने बारीक होते हैं कि पकड में ही नही आते। जो दीख रही है उससे कही ज्यादा होती है यह। तो इसे हम छोटा करके क्यो देखें!

आज पुन मैं उनके साथ बैठा हूँ। चाक्षुप नही हैं वे। दिल और दिमाग पर छाये हुए है। उनके व्यक्तित्व की यह छापी किसी निगेटिव से नही तैयार हुई है। अब बाबू जी के जीवन की समग्रता इतिहास बन गयी है। पहले वे कहानीकार थे, अब स्वय कहानी बन गए हैं। पहले वे रचना करते थे, अब स्वय उन्होंने रचना का रूप ले लिया है।

जीवन दो कोष्ठको के बीच घिरा है। पहला कोष्ठक है जन्म, दूसरा है मृत्यु। पहले को बडी त्वरा के साथ भेदते हुए जीवन आता है और दूसरे को पार करके आगे बढ जाता है। पहले बिंदु पर आह्लाद है, दूसर पर आँसू हैं। बाबूजी के न रहने पर आपको क्या लिखू कितना लिखू, समझ मे नही आता। शब्द छोटे पड रहे हैं।

दिन की अथवत्ता इस बात मे भी है कि वह शाम का स्वागत करे। खामोशी

# तल्लीताल बनाम मल्लीताल

बस की यात्रा कभी-कभी बडी कष्टकारक हो जाती है। दूरी कम हो तो कोई बात नहीं पर लम्बी दूरी तै करने के लिए बस का सफर थका देता है। मजबूरी में सब झेलना पडता है। हलद्वानी पहुँचकर मैंने सोचा था कि कम से कम एक रात यहाँ विश्राम किया जाएगा ऐसे मे थकान मिट जायगी। सबेरे नैनीताल का रास्ता पकडेंगे। मेरे गाइड थे डॉ० भगवती प्रसाद निदारिया और सहयात्री के रूप म सुदेश कुमार साथ थे। निदारिया की कलात्मक सूझबूझ म उनका अनुभव बोलता है। सुदेश मे पहाड देखने की ललक है। दरअसल हलद्वानी मे पहाड का व्यक्तित्व उतना सघन नही है। यह लकडी का इलाका है। जगली लकडी काट काटकर ढेर लगाए गए हैं। मूल्यवान लकडी का व्यापार करके पैसे वाले और अधिक धनाढय बन जाते हैं। सामान्य जन भी इसी काम मे लगे रहते हैं। ऊबड-खाबड माग भी कही न कही पहुचना ही है।

बडे कस्बे की सारी विशेषताएँ हलद्वानी मे पायी जाती हैं। माघ खत्म होने को था। उस पहाडी प्रदेश म गर्मी अधिक नहीं थी। सबर थाडी ठड महसूस की थी। उत्तर प्रदेश के आम कस्बो की तरह हलद्वानी भी अकिंचन-सा लगा था मुझे। इसे दीन दुनिया की खबर तो है पर चेहरे से लगता है कि यह बस्ती निरीहता की नींव पर टिकी है। पर इससे क्या? चेहरे का आइना तो प्रकृति बनाती है। उसकी समीक्षा करने का हमे अधिकार ही नही है।

रात को विश्राम-कक्ष से बाहर आता हूँ।

शहर सो रहा है। तारो की धीमी रोशनी अस्मिता की रक्षा नही कर पा रही है। जाने क्यो, मुझे नीद नही आ रही है। अपने वश मे तो है नही। यह बाँसुरी बजाने का समय नही है। नीद मे बाधा डालता स्वर आसमान मे फैलकर बह रहा है। सबेरे हमे ननीताल जाना है। पर रात तो बीतने का नाम नही ले रही है। *बाँसुरी के स्वर का चढाव उतार हमे बाँधता है। जीवन तो सगीत का* तावेदार है। रस भर देता है पूरे जीवन मे। नही भाई, नही। यह सगीत और स्वर-साधना का समय नही है। पास ही जगल विस्तृत हो गया है पर उधर से

सन्नाटा चीरकर आने वाले शब्द और स्वर-लहरें व्यवधान तो डालती ही हैं।

रात मे आकाश की नीलिमा दीख नही रही है। हलके श्याम रग के पट पर सितारे जडे हैं। कब तक इन्हें देखकर समय बिताया जाय। बची हुई रात कब बीत गयी, पता ही नही चला।

तडके उठकर उसी रात वाले आसमान को निहारता हूँ। नीलिमा पुन लौट आयी है। सितारो का पता नही है। उस वशी स्वर की अनुगूज भी कही खो गयी है। सूरज निकलने वाला है। जगल के रास्ते पर चहल पहल बढ गयी है। रात को सुस्ताने वाला समाज कमरत हो गया है। हम नैनीताल जाने की तैयारी कर रहे हैं। हलद्वानी तो जैसे पर्वत प्रदेश का सिंहद्वार है। व्यावसायिक केन्द्र है। बडा बाजार है।

पूरे महादेश पर दृष्टि जाती है।

यह देश चिन्तको का है। त्यागी और तपस्वी व्यक्तित्व वाले पुरखो ने कर्म की आराधना की। भागीरथी उतार लाए। समुद्र को मथ डाला। खगोल म झाँक देखा। भूगोल का परिचय लिया। कर्म गाथा बडी लबी है। किसी व्यावसायिक केन्द्र पर मेहनत मजूरी करते हुए लोगो को देखता हूँ तो मन अभिभूत हो उठता है। यदि श्रम का आधार कुदरत ने मनुष्य को न दिया होता तो आज का समाज कितना पगु होता!

*पहाड का जीवन कर्म की धरती पर पलता है।*

ऊची चढाई, पत्थर का राज, जगल की भयानकता और नदी की वाचालता मे यहाँ का जीवन पहचाना जा सकता है। यहा तो शिलाओ का शासन है। पाथर राज है यहाँ। सुना है कि हल्दी की लकडी कुछ पीली होती है। हलद्वानी नाम मे इसी लकडी का तत्त्व समाया हुआ है।

यहा किसी तरह पहाड तोडकर गोला नदी बहती है। बाँध बनाकर आदमी ने अपनी सुविधा खोजी है। पर इस बाँध से हलद्वानी मे नयापन आया है। सदुपयोग हो गया नदी का, अन्यथा लोग उसे कूडे कचरे की वाहिका ही बनाए रहते। पुरानी पोथियो म कहा गया है कि यह पहाडी प्रदेश अत्यत सुरम्य था। यहाँ शिरीष न्यग्रोध, सेमल नीम, देवदारु चीड, अर्जुन और पलाश आदि वृक्ष ऋतुओ का समयचक्र जानते थे। समय हो गया, ये फूट पडे। बहुवर्णी फूलो से पहाड लद गया। वनस्पति सपदा का आधिक्य किसी को निराश नही होने देता। वृक्षो और लताओ की इतनी कोटियाँ हैं कि आज का आधुनिक मानव तो उन्हें देखकर घबडा जाए।

पहाड की सडकें अपनी कृशकाया लिए कावा काटती हुई भाग रही हैं। मारुति कार मे बैठकर हम नैनीताल जा रहे हैं। हलद्वानी पीछे रह गयी है। मारुति की गति सामान्य है। ड्राइवर कहता है कि घुमाव वाली सडको पर तेज नही चला जा

सकता। अब हम पहाड़ की गोद में थे। मौसम में थोड़ी थोड़ी ठंड है। शी
बयार भली लग रही है। प्रकृति ने अपना खजाना खोल रखा है। सूरज
रोशनी उसे और चमका रही है। यदि सड़क की यात्रा घुमावदार न होती
रफ्तार की एकरसता बहुत बोर करती। मोड़ पर पहुंचते ही गाड़ी की
धीमी होती और रफ्तार की रस्सी लिपटने लगती।

रास्ते में छोटे छोटे गाँव मिलते। ऊँचे शैल शिखरों के चरणों में लो
घाटियाँ मिलती। श्रम से सँवारे गए खेतों के चेहरे दीखते। शिलाओं के रा
बहते सोतों का रसमय ससार दीखता। पर्वत की छाती तोड़ती वृक्षों की
भी कहीं-कहीं दीख जाता। यह पर्वत लोक अनन्त है। यह शिला-ससार
विस्तार में बोलता है। हरियाली की यह दुनिया मौन नहीं है। गहरी उपत्य
में बहती नदी ने बड़ी कठिनाई से अपना मार्ग खोजा होगा। ऐसी बहती है
मेढ़ी जैसे कोई उसका पीछा कर रहा है। पहाड़ के इस अनत विस्तार में
हुए पेड़ आकाश छूना चाहते हैं।

यही है नैनीताल। नैना देवी का मंदिर है यहाँ। लोकोक्ति है कि उन्हीं
के नाम पर यह नगर बसा है। चारों ओर पहाड़ ही पहाड़। बादल घिर
हैं। स्वेटर पहन लिये है लोगों ने। पर सैलानियों की तो दुनिया ही दूसरी
है। उनका उद्देश्य कहीं दूर होता है इसलिए मौसम की ज्यादती वे झेल लेते

सामने की झील तल्लीताल है। तल्ली यानी नीचे। मल्लीताल ऊ
ओर है। झील लगभग डेढ़ दो किलोमीटर की लंबाई में फैली है। किना
वृक्षों की पत्तियाँ पानी के शीशे में अपना अक्स देख रही हैं। और
बूंदाबांदी होने लगी। बादल बहुत नीचे झुक आए हैं। बड़ी-बड़ी बूंदें गिरने
बड़े कलाकार हैं ये बादल। अभी थोड़ी देर में रूप बदलकर चले जाएँगे
इन्हें बिखेर भी सकती है। चार पाँच बच्चे आसमान ताक रहे हैं। झील के
किनारे सड़क है साफ सुथरी। दूसरी ओर दूकानें हैं। इम्पोरियम हैं।
किनारे किनारे मकान बने हैं। होटल और आरामगाह हैं। पर्यटन केन्द्र
कारण नैनीताल आकर्षक लगता है। देशी विदेशी पर्यटकों का मेला ल
है। यहाँ कोई भी सामान सस्ता नहीं है। महँगाई और आधुनिकता दो
बहनें लगती हैं। दोनों झीलें इस नगर की शोभा हैं। पहले पहल जब य
रहने के लिए खोजा गया होगा, कितना रोमांचक रहा होगा वह अनुभव
झील में नावों की होड़ सी लगी है।

हैं, जीभ उसी तीव्रता से आपबीती कहती है। इस नाव को देखकर लगता है कि इसके मालिक के पास पैसे की कमी है। पैसा होता तो दौलतराम ऐसा सजाता इसे कि यह हर सैलानी का मन मोह लेती।

नाव धीरे धीरे मल्ली ताल की ओर बढ़ रही है। दोनों ताल आपस में मिली जुली हैं। पहाड़ काटकर बनाए गए मकान हरियाली के झुरमुट में छुपे-छुप दीखते हैं। दूरी के कारण ये बहुत छोटे दीखते हैं, वैसे उतने छोटे ये हैं नहीं। इन्हें देखकर लगता है बड़े-बड़े सफेद, मटमैले कबूतरों ने जैसे हरीतिमा ओढ़ रखी हो। इनके सौंदर्य से अनगिनत दृष्टिपात गुजरे होंगे। पर इनका क्या ? समय के फलक पर लिखी गयी कहानी जैसी लगते हैं ये।

अब तक बातूनी दौलतराम अपने तमाम किस्से सुना चुका। बुढ़ापे की ओर बढ़ चला है। नाव से उसका बड़ा आत्मीय रिश्ता है। नाव चलेगी तो वह भी चलेगा अन्यथा बैठा रहेगा। अपनी बीवी से ज्यादा प्यार करता है नाव को। नाव उसके लिए लेखक की कलम है। जिंदगी चप्पुओं के सहारे सरक रही है।

अब मैं कान और आँख का तालमेल नहीं मिला पा रहा हूँ। आँखें मानती ही नहीं हैं। कितना समझाऊं ?

जल की सतह पर चलता हुआ पेड़ों की ऊँचाई देख रहा हूं। दूर से ये पेड़ घास के ढेर जैसे दीखते हैं। आम, लीची, चीड़ और पलाश। अनगिनत वृक्षों के प्रकार। पलाश तो जैसे लाल लाल कलशों से स्वागत की रस्म पूरी कर रहा हो। दृष्टि दूर तक जाती है। डिजाइन बनाते पहाड़ दीख रहे हैं। वास्तव में इस झील के दोनों किनारे ही तल्ली और मल्ली कहलाते हैं। जिस नाव पर हम बैठे हैं उसका नाम है 'यू स्टार डीलक्स'। विदेशी नाम की बात ही और है। अंग्रेजी नाम का रौब ही दूसरा है। मेरा मन नाव से उतरने का नहीं था।

सामान बेचने वाले जानते हैं कि माल कहाँ खपेगा। बच्चों के बीच आइसक्रीम बेचने की कला सभी को नहीं आती। यहाँ विचरते नर-नारी एक नयी दुनिया साथ लाते हैं और उसे अपने साथ लेकर चले भी जाते हैं। सड़क पर पैदल चल रहा हूँ। झील के किनारे बत्तखों का जल विहार हो रहा है। धूप निकल आयी है। छोटी झील की छोटी सैर समाप्त हो चुकी है। लौटते समय बल्लियाखान, नैना गाँव और बेलुआखान जैसे कस्बे सैलानियों का परिचय पूछते से लगते हैं। ज्योलीकोट शहर का बस स्टेशन है। यहाँ बंदरों की एक छोटी दुनिया ही घूमती मिल गयी है। जैसे भारत की परिभाषा में पहाड़ और नदियों का महत्व है वैसे ही बंदर भी यहाँ कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

□□

ललित शुक्ल

कविता, कहानी, उपन्यास, रिपोर्ताज एव
समीक्षा के क्षेत्र मे
सुपरिचित हस्ताक्षर ।

प्रकाशित कृतियाँ

काव्य स्वप्ननीड, समरजयी, नयी 1, अन्तगत, सहमी हुई शताब्दी, सागर देख रहा है

कहानी धुधलका, आवाज आती है

उपन्यास दूसरी एक दुनिया, शेष कथा

रिपोर्ताज सोजालोबो, पावती के कगन

समीक्षा नया काव्य नये मूल्य, युगदृष्टा प्रेमचद

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक मानक कृतियो का सपादन ।

सपर्क शांतिद्वीप, 4 वाणी विहार, उत्तम नगर,
नयी दिल्ली 110059